सलीमा

अनवर सुहैल

सलीमा

हिंदी उपन्यास

अनवर सुहैल

संस्करण : २०१४

आवरण : के रवींद्र

सर्वाधिकार सुरक्षित : लेखकाधीन

प्रकाशक :

संकेत प्रकाशन

टाइप ४/३ आफिसर कालोनी

पो बिजुरी जिला अनुपपुर म प्र

४८४४४०

९९०७९७८१०८', ७५८७३९०१८३

sanketpatrika@gmail.com

(ई-बुक संस्करण)

फिर वही रफ़्तार बेढंगी---

आटा-चक्की के मोटर बहुत शोर करता है। लगता है उसकी बियरिंग खराब हो गई है। मोटर और चक्की के बीच तेज़ी से घूमते बेल्ट से उठता ‘खटपिट खटपिट’ का शोर सलीमा का कुछ नहीं बिगाड़ पाता।

सलीमा को इस शोर की आदत पड़ चुकी है।

आदत ऐसे ही नहीं पड़ती।

इंसान के पास जब सुविधाओं की सम्भावनाएं ख़त्म हो जाती हैं, जब बेहतर दिनों की आमद से वह नाउम्मीद हो जाता है तब उसे दुःख झेलते-झेलते दुःख सहने की आदत पड़ ही जाती है।

सलीमा ने अपने जीवन की राह में तमाम तकलीफ़ उठाए।

और इस तरह उसे परेशानियों से दो-चार होने में बड़ा मज़ा आने लगा।

इसीलिए सलीमा ने आटा-चक्की के बेसुरे ‘खटपिट खटपिट’ को एक ताल का रूप दे दिया और मन ही मन उस ताल पर एक गीत बना लिया है----

‘खटपिट खटपिट--- खटपिट खटपिट----

सलीमा खटती, दिन-भर खटती

कभी न थकती,   कभी न थकती’

इसी लय में डूबती-उतराती सलीमा अपने तन-मन की ज़रूरतों से बेख़बर रहने लगी।

आटा-चक्की के साथ कब वक्त गुज़र जाता, सलीमा जान न पाती।

अल्लाह ने उसे इस काम में इतनी बरकत दी कि चक्की के लिए न कभी गेहूं ख़त्म होता और न कभी काम---

जिसे गेहूं महीन पिसवाना हो वह महीन पिसवाए और जिसे मोटा चाहिए वह मोटा पिसवा ले---

सलीमा अपने ग्राहकों की फ़रमाईश दिल लगाकर पूरा करती ताकि मुहल्ले के लोग उसी की चक्की से गेहूं पिसवाने आएं।

सलमा ने चक्की के बाईं ओर रखी गेहूं की थैलियों पर निगाह डाली।

एक लाईन से रक्खी भिन्न-भिन्न आकार की सोलह-सत्रह थैलियां।

कुछ प्लास्टिक की बोरियां, कुछ कनस्तर और कुछ गेहूं भरे बोरे---
आखिरी वाली थैली के पीछे एक मोटा सा चूहा झांक रहा था।
सलीमा ने चूहे को घुड़की दी।
चूहा ठहरा ढीठ, सलीमा को टुकुर-टुकुर ताकने लगा, जैसे उसका जन्मसिद्ध अधिकार हो।
तब सलीमा ने आटा ठूंसने वाला लकड़ी का मुगदर चूहे की तरफ़ फेंक मारा।
चूहा सरपट भाग गया।
आटा-चक्की में चूहे आएं भी क्यों न!
चक्की बिठाने को बिठा ली थी सलीमा, लेकिन आज तक उसके पास इतने पैसे न जुट सके कि वह अंदरूनी दीवारों और फर्श पर प्लास्तर करवा सके।
दीवारों पर ईंट की जुड़ाई सीमेंट की जगह मिट्टी से की हुई है। चूहे, खटमल, दीमक और कनखजूरों के लिए तो जैसे स्वर्ग हों ऐसे घर---
सलीमा जब खिन्न होती तो बोल उठती--"दलिद्दर हैं स्साले सब----.!"
आटा-चक्की में गेहूं के अलावा अन्य चीज़ें भी पिसने आती हैं।
चूहों के पास स्वाद बदलने के बहुत विकल्प रहते हैं।
चूहे चाहें तो गेहूं पर हाथ साफ करें, चने पर या मकई के दानों पर।
इसीलिए सलीमा लोगों की थैलियों पर लाया गया गेहूं या अन्य सामान तत्काल पीस दिया करती। वह नहीं चाहती थी कि चूहों की बदमाशियों का खामियाजा उसे या उसके ग्राहकों को भुगतना पड़े।
मस्जिद के आस-पास बसे इस मुहल्ले की एकमात्र आटा-चक्की है सलीमा की।
सलीमा के पास, यदि दिन भर और काम न आए तो भी तीन-चार घण्टे का काम हाथ में रहता ही है।
लेकिन इस बिजली कटौती का क्या किया जाए? जैसे बारह बजा नहीं कि बिजली गुल हो जाया करती है।
दुपहर बारह से तीन बजे तक बिजली कटौती रहती है।
अब तीन बजे के बाद बिजली आएगी, तब बाकी का काम निपटाया जाएगा।
ये सोचकर सलीमा ने चक्की के फीडर को थोड़ा और खोल दिया ताकि सूपड़े पर बच

रहा माल जल्द पाटों के बीच आकर पिस जाए।
ऐसे ही कई पाटों के बीच पिस रही है सलीमा की ज़िन्दगी----.

‘मैं तन्हा था, मैं तन्हा हूं---”

खटपिट खटपिट----खटपिट खटपिट----
आटा-चक्की के चलने से ऐसी ही आवाज़ उठती है।
ये आवाज़ें सलीमा के मन को बहलाए रखती हैं।
जब तक चक्की चलती है, सलीमा मगन रहती है।
ऐसे समय उसे दीन-दुनिया की फिक्र नहीं रहती।
वह अपने दुखों को भूल जाती है।
अब सलीमा अकारण खुश भी तो नहीं होती। सुख-दुख के फेर से वह आज़ाद है।
इसीलिए सलीमा वक्त-बेवक्त रोती-सिसकती नहीं।
अपनी चालीस साल की उम्र में उसने जीवन के ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर बेरोक-टोक दौड़ने की सलाहियत पैदा कर ली है।
वह जानती है कि इस संसार में, हर आदमी अपना ‘सलीब’ खुद ढोने के लिए अभिशप्त है।
बाकी के रिश्ते-नाते सब संयोग मात्र हैं---
ये महज़ एक इत्तेफ़ाक है कि कोई किसी की मां है, कोई किसी का बाप।
संयोगवश कोई किसी का भाई है, कोई बहिन---
दुनिया में जो कुछ भी दिखलाई देता है, सब संयोग ही तो है।
क्या हमने चाहा था, कि हम इस संसार में आएं---
जब हम अपनी मजर्ी से आए नहीं, तब इस दुनिया से शिकवा कैसा?
सलमा को लता मंगेशकर का गाया एक गीत बहुत भाता है:
‘दुनिया में जो आए हैं तो जीना ही पड़ेगा
जीवन है अगर ज़हर   तो पीना ही पड़ेगा’
सलीमा बिना किसी गिला-शिकवा के अपनी बहनांे और बूढ़े अब्बू की अभिभावक है।
वह चाहती कि सोने के घण्टों के अलावा वह सारा दिन खटती रहे। इतना खटे कि थक कर चूर हो जाए।

ताकि रात एक भरपूर नींद की मालकिन बने।
एक ऐसी नींद, जिसमें किसी तरह के ख़्वाब न हों। अच्छे या बुरे कैसे भी ख़्वाब देखना नहीं चाहती सलीमा।
सलमा जानती है कि भरपेट लोगों को ही ख़्वाब बुनने और चुनने का हक़ है।
जिनके हिस्से में हर दिन कुंआ खोद कर पानी पीने का अभिशाप हो उनके लिए अच्छा ख़्वाब क्या अहमियत रखता है।

'मैं तन्हा था, मैं तन्हा हूं
तुम आओ तो क्या न आओ तो क्या?'

सलमा ने बड़ी बेदर्दी से अपने सपनों का गला घोंटा है।
व्ह चाहती है कि इसी तरह निरंतर खटती रहे।
लेकिन इस बिजली की कटौती का क्या किया जाए? इस बार तो सरकार इसी वादे के कारण बनी थी कि हर नगर-गांव को बिजली की भरपूर खेप दी जाएगी।
सत्ता पाते ही अपने वादे भूल जाते हैं ये नेता-परेता।
पहले की तरह बिजली की कटौती ज़ारी है।
दुपहर के ठीक बारह बजे लाईट चली जाती है।
आदमी चाहे तो घड़ी मिला ले।
हुआ भी वही, बारह बजे नहीं कि बिजली चली गई।
अभी चक्की के सूपे में आधा माल अनपिसा ही रह गया था।
हज्जन बीबी के घर का आटा था।
अब तीन बजे के बाद जब लाईट आएगी, तभी काम हो पाएगा।
हज्जन बीबी की नौकरानी आती होगी। कह रही थी कि सलीमा बीबी बड़ी 'मरजेंसी' है, झट् से पीस देना। हज्जन बीबी बड़ा घुड़कती हैं।
काम अधूरा जानकर वह ज़रूर चार बात सुनाएगी तो सुनाती रहे।
सलीमा पावर-हाउस की मालकिन तो नहीं,, और न कोई जिन्न-परी उसके बस में है कि बिना बिजली के आटा पीस दे।
जिसे सलीमा की चक्की में गेहूं पिसवाना हो पिसवाए वरना जहां जाना हो जाए।
सलीमा ने सोचा कि अब थोड़ा घर के अंदर की भी सुध ली जाए।

बहनों ने कुछ किया भी है या सिर्फ लड़ाई-झगड़ा, बनाव-सिंगार में दिन गुज़ार दिया है।
उसने दुकान के बाहर बैठे अब्बू पर निगाह डाली।
अब्बू धूप की सं◌ेक का आनंद ले रहे थे।

कौन सा दिल है जिसमें दाग़ नहीं

ये अब्बू का धूप-टाईम है।
वह बड़े इत्मीनान से आंगन की धूप में, फाईबर की कुर्सी पर बैठे हुए हैं।
उनकी पीठ पर कुनकुनी धूप का संेक को सलीमा ने महसूस किया।
अब्बू के पतले-दुबले बदन पर अम्मी के हाथों बुना बीसियों साल पुराना स्वेटर है।
सलीमा की अम्मी को स्वेटर बुनने का शौक था। हर साल गरमी के आग़ाज़ में जब फेरी लगाकर ऊन बेचने वाले अपने घरों को लौटना चाहते थे, तब वे औने-पौने पौन्ड पर ऊन बेच दिया करते थे। सलीमा की अम्मी ऐसे समय का इंतज़ार करती थीं और ढेर सारा ऊन खरीद लिया करती थीं।
अब्बू के बदन पर पड़ा ढीला-ढाला स्वेटर जिस समय बुना गया था, तब वह बैंगनी रंग का हुआ करता था। समय की मार खा-खाकर उस स्वेटर की रंगत अब धूसर-मटमैला हो चुका है।
सलीमा ने अब्बू के लिए फुटपाथ वालों से एक जैकेट खरीदा है, लेकिन अब्बू उसे नहीं पहनते। उन्हें जाने क्यों ये फटा-उधड़ा स्वेटर ही उन्हें भाता है।
अब्बू बुत बने से धूप की सेंक का आनंद ले रहे हैं।
ठंड में अब्बू की तबीयत नरम-गरम रहा करती है।
अब्बू ठंड के दिनों में रोज़ाना नहीं नहाते।
जुम्मा की नमाज़ भले वह अदा न करते हों, लेकिन जुम्मा के जुम्मा ज़रूर नहाते हैं।
वैसे भी मुसलमान जुमा के जुमा नहाने के लिए बदनाम ठहरे।
सलीमा है कि ज़िद करके उनकी बनियान और लुंगी धो दिया करती है।
अब्बू का मन करे तो वह महीनो कपड़े न बदलें।
अब्बू की मैल से चीकट हुई बनियान धोते सलीमा चिड़चिड़ा जाती-‘‘चिल्लर पड़ गए कपड़ों में अब्बू, तुम नहाओ न नहाओ, एक-दो दिन के बीच लुंगी-गंजी तो धुलवा लिया करो।’’
अब्बू हंस देते और बड़ी मुहब्बत से उसे निहारने लगते।
जाड़े के मौसम में अब्बू दुपहर में खाना खाने से पहले हाथ-मुंह मिज़ाज से धोया करते।

इसके लिए सलीमा सुबह आंगन की धूप में एक बाल्टी पानी रख दिया करती। बारह-एक बजे तक बाल्टी का पानी धूप की सेंक पाकर कुनकुना-गर्म हो जाता। अब्बू उसी पानी से हाथ-मुंह धोते।

सलीमा का मन अब्बू के प्रति ममता से लबरेज़ रहता है। अब्बू भी कभी-कभार कहते कि सलीमा तू तो मेरी अम्मा जैसी है। वाकई जैसे मां अपने बेटे का ख़याल रखती हैं उसी तरह सलीमा, अब्बू की छोटी-बड़ी ज़रूरतों का पूरा खयाल रखती है। अब्बू भी सलीमा की ख़ातिर-तवज्जो के आदी हो चुके हैं।

सलीमा ने देखा और सोचा कि कितने कमज़ोर हो गए हैं अब्बू।

किसी से कुछ नहीं कहते।

चक्की के बाहर जब कुर्सी लगाकर बैठते हैं तो बस सड़क पर आते-जाते लोगों को ख़ामोशी से ताकते रहते हैं।

उन्हें न कोई सलाम करता और न वो किसी को सलाम करते। बेगानी नज़रों से गुमसुम ताकते रहते हैं, जैसे वो कोई मकान हों, दीवार हों, पेड़ हों या कोई बिजली का खम्भा---

नगर के जिस इलाके में सलीमा का घर है, उसे इब्राहीमपुरा के नाम से जाना जाता है।

इब्राहीमपुरा यानी 'मिनी पाकिस्तान'।

ये तो सलीमा ने बाद में जाना कि हिन्दुस्तान में जहां-जहां मुसलमानों की आबादी ज़्यादा है उस जगह को 'मिनी-पाकिस्तान' का नाम दे दिया जाता है।

मुख्य-नगर में बड़े बाज़ार हैं, दीगर महकमों के दफ्तर हैं, सिनेमा-घर हैं, पेट्रोल-टंकियां हैं, मंदिर हैं----राजनीतिक दलों के कार्यालय हैं, गांधी, नेहरू, अटल-चैक हैं।

मुख्य-नगर जहां सामुदायिक भवन है, सब्जी-मंडियां हैं, कई मैरिज-हाॅल हैं, दशहरा-मैदान है, सरकारी-निजी विद्यालय हैं।

मुख्य-नगर जहां भीड़ है, दुकानदार हैं, खरीददार हैं वो बहुसंख्यक हिन्दू आबादी है। मुख्य-नगर की चकाचक सीमा जहां ख़त्म होती है वहां हर मौसम में गंधाता-बजबजाता नाला है। नाले पर संकरी पुलिया है और पुलिया के पार करिए तो इब्राहीमपुरा की बस्ती शुरू होती है। इब्राहीमपुरा यानी 'मिनी पाकिस्तान'।

सलीमा की आटा-चक्की एक तरह से नाले के बाद का पहला मकान है।

उसकी चक्की के सामने जो सड़क निकलती है वह राम-मंदिर से आती है।
नाले के किनारे बिकते हैं मुर्गे-मुर्गियां। तीन स्थाई दुकानें हैं बकरे के गोश्त की। दो दुकानें हैं मछली की। कुछ ठेले हैं जिनमें अण्डे बिकते हैं।
मीट-मछली की बदबू से आग़ाज़ होता है इब्राहीमपुरा का।
ये सड़क जाकर बड़ी मस्जिद तक जाती है।
बड़ी मस्जिद के पीछे तालाब है।
उस तालाब के पीछे मुसलमानों की एक नई आबादी बस गई है।
ये मुसलमान बाद में इस नगर में आए और अमूमन टायर, डेंटिंग-पेंटिंग, प्लम्बर, दर्जी, कबाड़ आदि छोटे-मोटे धंधे वाले मुसलमान हैं। उत्तर-प्रदेश, झारखण्ड और बिहार से आकर बसे इन मुसलमानों ने अपने लिए नई मस्जिद तामीर कर ली है जिसका नाम रखा है 'मदीना-मस्जिद' और अपने मुहल्ले का नाम रख दिया है रसूलपुरा।
रसूलपुरा की सीमा जहां समाप्त होती है वहां से शुरू होता है ईदगाह और कब्रिस्तान का इलाका।
पहले उस इलाके में शाम ढले जाने में डर लगता था, लेकिन अब तो ऐसा लगता है कि लोग कब्रिस्तान के मुर्दों को भगा कर वहां भी मकान बना लेंगे।
सलीमा की चक्की के पास ही बब्बन कस्साब की दुकान है। जहां सुबह सात बजे से रात आठ बजे तक बकरे का गोश्त मिल जाता है। बब्बन कस्साब के बगल में उसके छोटे भाई झब्बन की और सुल्तान भाई की बाॅयलर मुर्गी और अण्डे की दुकान है।
भरत कुर्मी और कुर्बान अली की मछली की गुमटियां भी उसी लाईन में है।
सलीमा को याद है कि उसकी हिन्दू सहेलियां इब्राहीमपुरा आने से डरती थीं। उन्हें लगता था कि मांसाहारी मुसलमान लोग आदमख़ोर भी हुआ करते हैं।
संस्कृत पढ़ाने वाले उपाध्याय सर तो क्लास-रूम में सरेआम कहा करते थे कि ये मुसल्ले बड़े गन्दे होते हैं। सप्ताह में एक बार नहाते हैं।
इनके घरों में अण्डा, मछली, मांस पकता है।
इनके मुहल्ले में बड़ी गंदगी होती है।
इन मुसल्लों के घरों में बकरे-बकरियां बंधी होती हैं जो चैबीस घण्टे मिमियाती रहती हैं। मेंगनी करती और मूतती रहती हैं। मुर्गे-मुर्गियों की तो पूछो ही मत। इन सबके बीच

ये मुसलमान अपने दिन-रात गुज़ारते हैं।
इनके दिल में तनिक भी दया नहीं होती।
ये जिस जानवर को बड़ी शान और प्यार से पालते हैं, फिर उसी जानवर की गर्दन काटते हैं। गर्दन काटते हैं तो वो भी बड़े इत्मीनान से जानवर के गले पर चक्कू-चापड़ घिसते हैं।
राम-राम, कितने निर्दयी होते हैं ये मुसल्ले---
मुसलमानों के समाज में औरतों की कोई इज़्ज़त नहीं।
औरतें अक्सर बीमार रहा करती हैं।
हर साल बच्चे पैदा करना मुसलमानों का मज़हब है।
इसीलिए मुसलमानों के मुहल्ले में बच्चों की बड़ी तादाद होती है।
न जाने क्यों मुसलमान ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं। नंगे-अधनंगे गंदे बच्चे गली-मुहल्ले में छितराए रहते हैं।
बच्चों और औरतों के बदन में कपड़ा हो न हो, लेकिन इन मुसलमानों की रसोईयों में मांस ज़रूर पकना चाहिए।
हद तो ये है कि जब इन मुसल्लों ने अपने लिए पाकिस्तान मांग ही लिया फिर यहां काहे जगह घेरने के लिए रूक गए!
पहले कितनी कम आबादी थी इन मुसल्लों की यहां।
नसबंदी का विरोध इन्होंने किया, क्योंकि इनके आका इन्हें बताते हैं कि आबादी बढ़ाकर अल्पसंख्यक से बहुसंख्यक कैसे बना जाता है?
सलीमा को उसकी हिन्दू सहेलियां इन्हीं सब कारणों से चिढ़ाया करतीं।
उसकी पक्की सहेली मीरा ने एक दिन सलीमा से पूछा था कि तुम लोगों में लड़कों को मुसलमान बनाने के लिए खतना किया जाता है लेकिन लड़कियों को कैसे मुसलमान बनाते हैं?
सलीमा क्या बताती।
लड़कियांे का तो कोई मज़हब नहीं होता, कोई जात नहीं होती, कोई पहचान नहीं होती, उनका कोई प्रान्त नहीं होता----.लड़कियां तो अपने-आप में एक मज़हब हैं।
सलीमा कहां समझा पाती इतना सब।

इसीलिए उसने मीरा से बात करना बंद कर दिया।
क्या फ़ायदा ऐसी लड़कियों से दोस्ती करके। जब उन्हें उसका मज़ाक ही उड़ाना है। स्कूल में भी तो जब देखो तब पूजा-पाठ होता रहता है, क्या रखा है इस पूजा-पाठ में। क्या पत्थर के देवी-देवता या तस्वीरों को पूजने से इनका भला होगा? वह तो उनकी हरकतों पर कभी ऐतराज़ नहीं करती है। और ऐसा नहीं है कि सलीमा पूजा में शामिल नहीं होती थी। उसे सरस्वती वंदना याद है। गायत्री-मंत्र याद है। वह जानती है कि चरणामृत कैसे लिया जाता है, आरती के बाद दीपक की लौ की सेंक कैसे ली जाती है, प्रसाद कैसे दाहिने हाथ के नीचे बांई हथेली रखकर ग्रहण किया जाता है। वह सब जानती है। उसे देखकर कोई नहीं कह सकता कि वह एक मुसलमान लड़की है।
फिर उसके मज़हब का ये लोग क्यों मज़ाक उड़ाते हैं, सलीमा समझ न पाती।
सलीमा जानती है कि लोग मुसलमानों से चाहे कितनी नफ़रत करें, लेकिन गाहे-बगाहे उन्हें अब्बू की शरण में आना ही पड़ता है।
अब्बू के हाथ में जादू जो है।
बड़ा हुनर दिया है अल्लाह-पाक ने उनके हाथों में।
अपनी जवानी के दिनों में पहलवान हुआ करते थे अब्बू। उनका नाम था महमूद जो कि बिगड़कर बन गया था 'मम्दू पहलवान'।
अम्बिकापुर के नामी पहलवान बन्ने मियां की शागिर्दी की थी उन्होंने। बन्ने मियां हड्डी और नस के अच्छे जानकार थे। अब्बू ने पहलवानी से ज़्यादा बन्ने मियां से हड्डी और नस की डाॅक्टरी जान ली थी।
हड्डियों के जोड़-जोड़ की जानकारी उन्हें है।
जिस्म की तमाम नसों को अपने इशारे पर नचा सकते हैं वो।
नगर के पुराने लोग अभी भी उनके पास हड्डियां बिठाने या फिर राह भटकी नसों को सीधी राह पर लाने के लिए आया करते हैं।
ऐसे तमाम ज़रूरतमंद लोगों को अब्बू सुबह बुलाया करते।
चाहे मरीज़ कितना भी बड़ा आदमी क्यों न हो, कुसमय इलाज नहीं करते।
ये कहकर लौटा देते-''सुबह आओ---नसों की सही जानकारी सुबह ही मिलती है।''
सलीमा की नींद सुबह फजिर की अज़ान की आवाज़ से न खुल पाई तो फिर अब्बू के

मरीज़ों की आमद से खुलती है।
अलस्सुबह लोग चक्की वाले कमरे से लगे बाहरी कमरे की सांकल बजाते हैं।
''पहलवान'च्चा!''
या फिर 'मम्दू पहलवान हैं क्या?''
अब्बू बिस्तर से उठते नहीं।
बिस्तर पर लेटे हुए सलीमा को आवाज़ देते हैं-''देख तो बेटा, कौन आया है?''
अब्बू की एक आवाज़ पर सलीमा झटके से बिस्तर छोड़ती है। चेहरे पर दोनों हथेलियां फिराकर अंदाज़ से बाल दुरस्त करती है। फिर जल्दी से कपड़े की सलवटें ठीक करती, दुपट्टा गले पर डालते हुए चक्की के मेन-गेट पर लगे ताले को खोलने चली जाती है। बाहर खड़े लोगों के चेहरे पर दर्द की लकीरें देख वह उन्हें अंदर आने का इशारा करती। चक्की का अंधेरा गलियारा पार कर आंगन के बाद रसोई से लगा कमरा अब्बू का है। अब्बू की चारपाई के बगल में एक स्टूल रखा है।
मरीज़ उस पर बैठ कर अपना दुख बताता।
''बहुत दर्द कर रहा है ये वाला पैर, इसे ज़मीन पर रखूं तो जैसे जान निकल जाती है।''
मरीज़ ज़मीन पर पैर जमा कर खड़ा होने की कोशिश करता और उसके मुंह से कराह निकल जाती।
अब्बू बिस्तर पर पड़े टुकुर-टुकुर उस मरीज़ को निहारते, कुछ नहीं कहते।
फिर लिहाफ़ हटा कर उठ बैठते।
तकिए के नीचे से बीड़ी का कट्टा और माचिस निकालते। एक बीड़ी सुलगाते और फिर मरीज़ को स्टूल पर बैठने का इशारा करते।
इत्मीनान से बीड़ी फूंक कर चारपाई से उठते और ज़मीन पर उकड़ू बैठ कर मरीज़ की एड़ियों को इधर-उधर घुमाते। मरीज़ दर्द से कराहने लगता। अब्बू के पतले-पतले हाथ उसके घुटने के पीछे जाकर जाने क्या करतब करते कि मरीज़ एक गहरी आह भर कर चुप हो जाता।
अब्बू वापस अपनी चारपाई पर बैठ जाते और मरीज़ से कहते कि एक-दो बार पैर झटको।
वह ऐसा ही करता।

आश्चर्य! मरीज़ के चेहरे पर छाई दर्द की लकीरें अब नहीं दीखतीं।
मरीज़ अब्बू को बड़े आदर से देखता तो अब्बू कहते कि नस चढ़ गई थी। गरम पानी में नमक डाल कर पैरों को दो-तीन बार धो लेना।
मरीज़ इलाज से संतुष्ट होकर अपनी जेब टटोलता।
अब्बू की फीस मात्र दस रूपए है। चाहे उन्हें उस हड्डी को बिठाने में एक घण्टे लग जाएं या फिर एक पल---
अब्बू पैसा अपने हाथ से नहीं छूते। तकिया उठाकर इशारे से कहते कि तकिए के नीचे पैसा रख दो।
मरीज़ तकिए के नीचे रूपए डाल कर बड़ी श्रद्धा से उन्हें देखता।
आज के ज़माने में इतना सस्ता इलाज!
कस्बे मेंें अब तो कई लोग हैं जो इस हुनर के जानकार हैं, लेकिन मम्दू पहलवान की बात ही और है।
भूले-भटके एक-दो मरीज़ हर दिन अब्बू को मिल ही जाते हैं, जिससे उनकी शाम की दारू का खर्च निकल आता है।
सलमा के ख़ानदान की मुहल्ले में कोई क़द्रो-क़ीमत नहीं है। इसका कारण सलीमा जानती है। जैसे कि अब्बू की पियक्कड़ी, अम्मी और मौलाना के क़िस्से, सलीमा का घिनौना अतीत---
वैसे इस ज़माने में दूध का धुला कोई नहीं।
हरेक चादर दाग़दार है आजकल, लेकिन धन-दौलत का पर्दा बदनामियों को ढंक लेता है और ग़रीबों की बदनामियां जंगल की आग बन कर फैल जाती हैं।
सलीमा जानती है कि इस हमाम में सभी नंगे हैं----
कौन सा दिल है जिसमें दाग़ नहीं!
बस, ज़माने का दस्तूर यही है कि जो पकड़ाए वही चोर----

अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिए जाते हैं

क्या है कि अपने धुन की पक्की सलीमा किसी की परवाह नहीं करती।
उसने अपनी इस छोटी सी ज़िन्दगी में बड़े अनुभव बटोरे हैं।
उसने कम उम्र में ही संसार की कई ऐसी हक़ीक़तें जान लीं थीं कि जिनके लिए एक इंसान को कई-कई जन्म लेना पड़े।
ये सच है कि लोगों के मन में झांकने की कला खुदा ने मर्द की अपेक्षा औरत को ज्यादा दी है।
ये भी सच है कि ग़रीब औरत, अमीर औरत से पहले अच्छे-बुरे, सही-ग़लत आदि में फर्क कर लेती है।
सलीमा एक तो लड़की है दूजे ग़रीब है और छिः-छिः मुसलमान भी है!
इसका मतलब इस तथाकथित सभ्य समाज में उसे प्रताड़ना, यातना और अपमान तो झेलना ही होगा। इस तिहरी मार से उसे कोई नहीं बचा सकता।
सलीमा जिस समाज में रहती है वहां किसी स्त्री ने सिमोन द बुआर का नाम भी नहीं सुना है। ा तस्लीमा नसरीन, सनी-लियोन, प्रभा खेतान आदि के बारे में वे कुछ नहीं जानती हैं, लेकिन स्त्री-यौनिकता, स्त्री-स्वतंत्रता और पुरूष मानसिकता की बातें अपने हिसाब से वे अच्छी तरह जानने लगती हैं।
इन्हीं स्त्रियों के बीच रहकर सलीमा भी जानने लगी है कि लड़के और लड़कियों की ज़िन्दगी मंे, उनके फितरत में, उनके मुस्तकबिल में बड़ा फर्क होता है। लड़कों को हमारा समाज एक वरदान के रूप में देखता है और लड़कियों की पैदाईश को अभिशाप या दंश के रूप में झेला जाता है।
लड़कियां बचपन से दब्बू, शर्मीली, डरपोक, वाचाल, बनावटी और कमज़ोर सी होती हैं जबकि इसके बरअक्स लड़के दबंग, बिंदास, निडर, उद्दण्ड, शातिर और जिस्मानी तौर पर मज़बूत होते हैं।
बचपन से ये करो, ये न करो सुनते-सुनते, लड़कियों में आत्मविश्वास की कमी आ

जाती है जबकि स्वच्छंद लड़के ज़िद मंे आकर हर तरह के काम करने का प्रयास करते हैं। बड़े-बड़े रिस्क लेने लग जाते हैं। अकेले कहीं भी, किसी भी समय आ-जा सकते हैं।
लेकिन जाने कैसे सलीमा ने जान लिया था कि लड़कों की श्रेष्ठता के पीछे कोई आसमानी-वजह नहीं है, क्योंकि जन्म से ही लड़कों को लड़कियों की तुलना में ज़्यादा प्यार-दुलार, पोषण, शिक्षा, उचित देख-भाल, सहूलियतें और आज़ादी मिलती है।
लड़के पूरे परिवार की आंख का तारा होते हैं और लड़कियां आंख का कीचड़ या किरकिरी!
इसीलिए तो लड़कों में आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा रहता है।
बचपन में भकुआए से भोंदू दिखने वाले लड़के बड़े होकर कितनी जल्द परिवार और समाज पर राज करना सीख जाते हैं। जबकि परिवार की ज़िम्मेदारियां उठाती वाचाल लड़कियां बड़ी होकर कांच के सामान की तरह हो जाती हैं, जिन्हें बड़ी होशियारी से इस्तेमाल न किया तो टूट जाने का अन्देशा बना रहता है। डरी-डरी, खामोश, सकुचाई लड़कियों से संसार अटा पड़ा है। बहुत कम लड़कियां हैं जो पुरूष-प्रधान समाज में अपने अस्तित्व की लड़ाई स्वयं लड़ती हैं।
सलीमा के बस एक बात समझ न आती कि ऐसी कौन सी चीज़ है इज़्ज़त जिसे खोने का डर लड़कियों में आजन्म बना रहता है और लड़कों के साथ इज़्ज़त जैसी कोई शर्त या बाध्यता नहीं रहती।

भले से संविधान और संसद स्त्रियांे को अकूत अधिकार दे दे लेकिन स्त्रियां पुरूषों के मार्फत ही उन सुविधाओं का लाभ उठा पाती हैं।
सलीमा ने अपने अनुभवों से जान लिया था कि ये संसार एक प्रयोगशाला है, जहां इंसान ग़ल्तियां कर-करके सीखता है, क्योंकि जीना एक कला है और विज्ञान भी।
सलीमा अच्छी तरह जानती है कि अच्छे-अच्छे तुर्रम ख़ाॅं, भूख और ग़रीबी के आगे मात खा जाते हैं।
अच्छे-अच्छे विवेकवान, समर्थ और योग्य दिग्गज समय की ठोकरें खा-खाकर धूल-धूसरित हो जाते हैं।

किस्मत के मारे ऐसे लोग नैतिक-अनैतिक, हराम-हलाल, पाप-पुण्य और स्वर्ग-नर्क के चक्कर में नहीं फंसते।
वे अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए कुछ भी कर गुज़रने का जज़्बा रखते हैं।
उनके कार्य को तथाकथित सभ्य समाज चाहे अपराध की संज्ञा दे या पाप की, उन्हें फर्क नहीं पड़ता।
ऐसा मुसीबतज़दा इंसान ये नहीं सोचता कि उसके हिस्से में आई रोटी, हराम की कमाई है या हलाल की।
ऐसा इंसान ये नहीं सोचता कि वह अच्छा या बुरा जो भी कर रहा है उसे कोई देखे या न देखे, अल्ला देख रहा है---
अल्लाह देख के भी तत्काल क्या करेगा----वो तो जो भी करेगा, इंसान की मौत के बाद ही।
इस पृथ्वी पर अधिकांश लोगों का जीवन इतना कठिन है कि उन्हें ज़िन्दगी पास नहीं बुलाती और मौत दुत्कारती रहती है।
ऐसे लोग मरने से नहीं डरते, स्वर्ग की लालच नहीं करते और हर तरह के नरक को ठेंगे पर रखते हैं।
वे जानते हैं कि ये जून किसी तरह गुज़र जाए----..
किसी तरह जीवन का एक-एक दिन काटा जाए----
वे ये भी जानते हैं कि 'फिर क्या होगा, किसको पता
अभी ज़िन्दगी का ले लो मज़ा----''
वे जानते हैं कि मरने के तत्काल बाद स्वर्ग-नर्क का निर्णय नहीं होता।
मुर्दा दफ़न होने के बाद क़ब्र में क़यामत आने तक पड़ा रहता है।
कुरान-शरीफ़ में अल्लाह ने कहा है कि हमने एक फरिश्ता हज़रत इस्राफील को मुकर्रर किया है, जिसके हाथ में सूर यानी शंख है। हज़रत इस्राफील की ड्यूटी है कि हाथ में सूर लिए खड़े रहें। जब अल्लाह तआला उन्हें कहेगा कि सूर फूंक दो, और हज़रत इस्राफील सूर फूंकेंगे और सारी कायनात में कयामत आ जाएगी।
सूरज धरती के क़रीब आ जाएगा।
समुद्र का पानी भाप बन कर उड़ जाएगा।

पहाड धूल बन कर उडने लगेंगे।
जब सब कुछ ख़त्म हो जाएगा, तब अल्लाह तआला एक बहुत विशाल मैदान में जिसे हश्र का मैदान कहते हैं, सारे मुर्दों को इकट्ठा होने का हुक्म देगा।
वहां फ़रिश्ते लोगों के पाप-पुण्य का हिसाब करेेंगे।
तभी अल्लाह तआला का हुक्म होगा कि फलां शख़्स जन्नत का हक़दार है या निरा दोज़ख़ी है।
वैसे भी हाफिज, मौलाना अपनी तकरीरों में जिस दोज़ख़ यानी नरक का ज़िक्र करते हैं, वो कितना भी यातना देने वाला हो, इस संसार की भट्टी में तपते उनके जीवन से तो कम ही भयावह होगा।
अभाव, निर्धनता, भुखमरी से जूझता उनका जीवन किसी नरक से कम तो नहीं----
गर्म तवे पर पानी की बूंद डालो तो छन्न से ग़ायब हो जाती है।
ग़रीब का जीवन उस गर्म तवे की तरह है जिसमें सुविधाओं की बूंदें पड़ती हैं तो छन्न से भाप बन कर उड़ जाती हैं।
इन्हीं घनघोर अभावों से दो-चार होती सलीमा कब सयानी हो गई, वह जान न पाई। उसे हालात ने सयाना कर दिया था।
वह अभी दस साल की ही थी कि उसकी अम्मी घर छोड़कर चली गई।
अब्बू उस सदमे को झेल न पाए और नीम-पागल हो गए।
यदि दारू का सहारा न होता तो कब के मर-बिला गए होते अब्बू।
सलीमा अपने अम्मी-अब्बू की पहली संतान थी यानी घर बड़ी लड़की।
सलीमा के बाद दो बेटियां और इस संसार में आई, सुरैया और रूकैया।
पहलौटी यदि बेटी हो तो गृहस्वामिनी को अगले प्रसव और अगले बच्चे को देखभाल के लिए आॅटोमेटिकली एक आया मिल जाती है। बड़ी बेटी जल्द ही इतनी समझदार हो जाती है कि अपने से छोटे भाई-बहिनों का मां की तरह ध्यान रखना सीख जाती है।
सलीमा ने अपने बिखरे परिवार को समेटने का अद्भुत प्रयास किया।
अम्मी की त्रासदी के बाद से वह एक कछुए की तरह बन गई।
उसने अपनी खाल को इतना कड़ा कर लिया कि कैसा भी प्रहार बेकार हो जाए।

सलीमा बाहरी दुनिया के छल-प्रपंच से अन्जान तो थी, लेकिन असावधान नहीं।
इस पुरूष-प्रधान समाज में स्त्री एक चूज़े की तरह हीे तो है।
नन्हे-मुन्ने, भोले-भाले चूज़े----.
जिन्हें मौका पाकर कुत्ते, बिल्ली या कव्वे झपट्टा मार कर चट कर जाते हैं।
ंइतने बड़े जहान में, एक भोली-भाली लड़की से किशोरी और फिर युवती बनने का सफर, जोखिम भरे रास्तों पर अपने दम चलकर तय किया था सलीमा ने।
हताशा, निराशा और मायूसी जैसे शब्दों से जल्द निजात पाकर उसने आशा, उत्साह और उमंगों के सुर से अपने जीवन को।
फिर ज़माने की ठोकरों से उसने जान लिया कि औरत को अल्लाह ने मर्दों की तुलना में एक अतिरिक्त कुदरती औजार दिया है।
जिस्म का हथियार।
औरत के लिए एक ऐसा हथियार है जिस्म जो उसकी ताक़त भी है और उसकी कमज़ोरी भी।
हां, औरत को इस हथियार के इस्तेमाल का सबक़ यही समाज देता है।
ये ऐसा अस्त्र है जिसके ज़रिए औरत अपनी तमाम ज़रूरतें पूरी कर सकती है--- चाहे तो दौलत का अंबार लगा सकती है।
और जिसके पास दौलत नहीं उसके लिए कैसा घर, कैसा दर, कैसा समाज, कैसा वतन---
एक बार दौलत पास आ जाए, फिर संसार में और कोई मुश्किल नहीं!
बस्स--------.एक ही मुश्किल है कि ये हथियार बाज़ार में बड़ी जल्दी भोथरा हो जाता है।
फिर उसकी मारक-क्षमता धीरे-धीरे खत्म होती जाती है।
सच है, देह से धनोपार्जन के लिए बहुत ही सीमित समय रहता है औरत के पास----..

सजना है मुझे---

अब्बू की हालत देख-देख सलीमा दुखी हो जाती।
जैसे अब हो गए हैं अब्बू, इतने कमज़ोर पहले न थे।
एक ज़माने में अब्बू पहलवानी भी किया करते थे।
अब तो वे बस आटा-चक्की के बाहर कुर्सी पर बैठे बीड़ी फूंकते रहते हैं और शाम गहराते ही दारू पीने के चक्कर में भट्टी की तरफ चले जाते हैं।
यही उनका शगल है।
जब से अम्मी ने अब्बू का दामन छोड़ा अब्बू की ये हालत हो गई है।
सलीमा से छोटी सुरैया तो नहीं, लेकिन छुटकी रूकैया एकदम अम्मी पर गई है।
वैसे ही साफ रंगत, पानीदार चेहरा, कटीली-कजरारी आंखें, भरे-भरे गाल!
अब्बू जब भी रूकैया को देखते, ख़ामोश रहते। रूकैया उनके जिगर का टुकड़ा है। उसे बहुत प्यार करते। फिर उनकी आंखें भर आया करतीं। वे अम्मी की याद में खो जाते। खोएं भी क्यों न!
अम्मी थीं ही रूई के फाहे जैसी नर्म-मुलायम-सफेद और किसी शाहज़ादी जैसी नफ़ासत-नज़ाकत से लबरेज़। कोई सोच भी नहीं सकता था कि आटा-चक्की में काम करने वाले एक मामूली व्यक्ति के घर इतना क़ीमती खज़ाना होगा।
सलीमा एक दिन अब्बू के कमरे में सफाई कर रही थी तो एक पुरानी कापी में उसने कुछ तस्वीरें छिपी देखीं। पांच तस्वीरें थीं।
किसी मीना-बाज़ार में लगता है तस्वीरें खिंचवाई गई थीं।
एक तस्वीर में कश्मीर की वादियों के बैक-ग्राउण्ड में खींची गई अब्बू और अम्मी की तस्वीर। अब्बू कुछ लजाए-शरमाए दिख रहे थे जबकि अम्मी बिंदास मुस्कुराते हुए कैमरे को देख रही थीं। कितनी खूबसूरत थीं अम्मी।
बाकी की तस्वीरें अम्मी की थीं, जिसमें मुम्बई की इमारतों के पर्दे के सामने अम्मी कई मुद्रा में तस्वीरें खिंचवाई हुई थीं। अम्मी किसी हीरोईन की तरह नज़र आ रही थीं।

रंगीन तस्वीरों में एक बात गौर करने वाली ये भी थी कि अम्मी ने सिंदूर लगाया था और लाल रंग की बड़ी सी बिन्दी उनके चेहरे को और भी आकर्षक बना रही थी। सलीमा ने सोचा कि अम्मी बेशक फ़रीदा जलाल जैसी दिखती हैं। अब की फ़रीदा जलाल नहीं बल्कि जवानी वाली फ़रीदा जलाल जैसी----.

अम्मी के गाल पर फ़रीदा जलाल के गाल जैसे डिम्पल बनते।

उनकी आंखें कुदरती कजरारी थीं।

बदनसीब अब्बू के पास सिवाए ग़रीबी और फ़ाकाक़शी के और कोई दौलत न थी।

यही ग़रीबी उनके सुख-चैन की दुश्मन बनी।

अब्बू हाजी जी की आटा चक्की में मुलाज़िम हुआ करते थे।

वह बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ काम किया करते।

आटा-चक्की की रिपेयर खुद ही कर लिया करते।

थोड़ा बहुत पढ़े-लिखे थे सो ग्राहकों के गेहूं आदि तौल कर पर्ची और रजिस्टर में नाप-तौल दर्ज कर दिया करते। हाजीजी को उनसे बड़ा आराम था। वैसे चक्की में और भी कई कारीगर थे, लेकिन अब्बू हाजीजी के सबसे ज्यादा विश्वासपात्र थे।

हाजीजी की चक्की में सिर्फ गेहूं ही नहीं पिसता था, वहां तेल पेरने की मशीन भी थी।

धान से चावल निकालने की मशीन और मसाला पीसने की चक्की भी थी।

अब्बू चक्की में लगने वाले भारी गोलाकार पत्थरों की टंकाई का काम भी किया करते थे।

उनके पास छोटी-छोटी कई तरह की धारदार छेनियां और हथोड़ियां थीं।

यही कारण था कि हाजीजी अब्बू को बहुत मानते।

ईद-बकरीद के मौक़े पर बख़्शीश बतौर सलीमा के सारे परिवार के लिए कपड़े हाजीजी के घर से आतेे। बच्चों को अलग से सिवैंयां खाने को मिलतीं और अलग से ईदी भी।

छोटे-छोटे सपने देखते, छोटी-छोटी खुशियों के साथ उनकी ज़िन्दगी के दिन ठीक-ठाक गुज़र रहे थे।

फिर भी अम्मी का दिल उस घर में नहीं लगता था।

तीन-तीन बेटियां जनने के बाद भी अब्बू उनसे बेइंतेहा प्यार करते थे।

दादी-अम्मी पोते का आस लिए अल्लाह को प्यारी हो गईं।

अब्बू हर वक्त अम्मी का ख्याल रखते।
उन्हें किसी किस्म की तकलीफ न हो इसका पूरा ध्यान रखतेे।
अब वह चाहे कपड़े धोना हो, या बाहर से पानी लाना या फिर बच्चों के पोतड़े धोना।
अब्बू अम्मी को पूरा आराम देते और घर के अधिकांश काम खुद ही निपटा दिया करतेे।
जब सलीमा पांच-छह बरस की हो गई तो उसने भी अब्बू के काम में हाथ बंटाना शुरू कर दिया।
सलीमा को बुरा लगता कि अम्मी के रहते अब्बू जब-तब अब्बू नाश्ते की रोटियां खुद ही बना-खाकर काम पर चले जाते।
वह नाहक अम्मी को आवाज़ लगाकर न जगाते।
इसीलिए अम्मी बेहद आलसी और आराम-पसंद थीं।
ऐसा लगता कि फिल्म पाकीज़ा के एक सीन की तरह अब्बू बिस्तर पर पसरी अम्मी से यही कह उठेंगे--''अपने पांव ज़मीन पर मत रखिए----मैले हो जाएंगे!''
अम्मी बच्चों को और अपने शौहर को किसी नौकर-चाकर की तरह माना करतीं।
पानी-पानी चिल्लाती पड़ी रहती लेकिन खुद उठकर एक गिलास पानी नहीं पी पाती थीं।
हां, इसका मतलब ये नहीं कि वह गू-मूत में लसड़ाई रहती हों, अरे नहीं बल्कि बिना सजे-संवरे वो घर की चैखट के बाहर क़दम न रखा करतीं।
संवरने में उन्हें घण्टों लग जाएं तो लगें, वे बड़े इत्मीनान से सजती-संवरतीं थीं।
नींद खुलने के साथ अम्मी सिरहाने रखे छोटे से आईने में अपना चेहरा देखतीं।
अपनी किचड़ियाई आंखें साफ करतीं।
जल्दी-जल्दी उलझे बालों को कंघी से दुरस्त करतीं।
फिर नित्य-कर्म से फुर्सत पाकर आंगन वाले बड़े आईने के सामने आकर, अपने लम्बे बालों पर कंघी करतीं और चेहरे पर सस्ता पाउडर लगातीं। आंखों में सुरमा डालतीं।
सलीमा पर अम्मी हमेशा गुस्सा किया करतीं कि सलीमा उनकी लिपिस्टिक को बरबाद कर देती थी।
वैसे भी लड़कियां बचपन से बनाव-श्रृंगार के प्रति अधिक लगाव रखती हैं।
फिर जब सुरैया थोड़ी जानकार हुई तो वह भी लिपिस्टिक-पाउडर की दुश्मन बनने

लगी।
फिर घर में रूकैया नामक खिलौना आया तो दोनों बड़ी बहनें मिलकर रूकैया का श्रृंगार किया करतीं। इस चक्कर में अम्मी का स्नो-पाउडर, क्रीम, लिपिस्टिक, सुरमा बरबाद होता और एवज़ में तीनों बहन अम्मी से पिटती भी थीं।
घर में आमदनी के साधन तो जैसे-तैसे थे, फिर अम्मी के पास नई-नई साड़ियां कहां से जुगाड़ कर लेती थीं, ये न अब्बू ने कभी जानना चाहा और न सलीमा जान पाई। अम्मी को सिलाई-कढ़ाई भी करती थीं और अपनी बच्चियों के लिए पुरानी साड़ियों से फ्राॅक, सलवार-सूट और दुपट्टे सिल दिया करती थीं।
इसीलिए सलीमा, रूकैया और सुरैया तीनों बहिनें अम्मी की चापलूसी किया करतीं। अम्मी की ख़िदमत दौड़-दौड़कर किया करतीं।
लेकिन अम्मी के दिलो-दिमाग में तो एक अलग खिचड़ी पक रही थी----.
जिसके बारे में न अब्बू जानते थे, न तीनों बहनें और न आस-पास का समाज----.

तिरिया चरित्तर

सलीमा के जेहन मंे हल्की सी याद है उस नामुराद मौलाना क़ादरी की, जिसने अम्मी को अपने वाग्जाल में फंसाया था।

मौलाना क़ादरी पैंतीस साल का आकर्षक शख़्स था।

गोरा-चिट्टा, दरमियाना क़द। चेहरे पर कम मूंछ और ज्यादा दाढ़ी। बाल काले-घने और गरदन तक झूलते हुए। सिर पर गोल टोपी खपकाए रहता।

कुर्ता-पैजामा, मुसलमानी जैकेट और कंधे पर शतरंजी स्कार्फ----ये बात है कि इस पोशाक के ज़रिए मौलाना क़ादरी आसानी से पहचान में आ जाता था। कभी-कभी मौलाना सिर पर सफेद टोपी पर हरी पगड़ी भी लपेट लिया करता था।

मौलाना क़ादरी की आवाज़ बड़ी मधुर थी।

वो अक्सर मस्जिद से अज़ान दिया करता तो सुनते रह जाते। उसका तलफ़्फ़ुज़ परफेक्ट था। मौलाना क़ादरी की आमद के बाद मुहल्ले में आए दिन मीलाद की महफ़िलें सजने लगी थीं। मौलाना जिस तरीके से पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद की जीवनी और उनकी शिक्षाओं के बारे में मीलाद किया करते और फिल्मी गानों की तर्ज पर नात-ख़्वानी करते उससे उसकी ख्याति आस-पास की मुसलमान बस्तियों में भी होने लगी थीं।

मज़े की बात है कि मौलाना क़ादरी से पहले मुहल्ले में ऐसे बहुरंगी-प्रतिभावान मौलाना नहीं थे।

मुहल्ले की जामा-मस्जिद में बुजुर्ग हाफ़िज़ थे जिन्हें सभी मुसलमान बड़ी श्रद्धा से बड़े हाफिज्जी कहा करते थे।

बड़े हाफिज्जी एक परहेज़गार, इल्मो-दीन के जानकार और गुपचुप इबादत में यक़ीन रखते थे। कहते हैं कि वह तहज्जुद-गुज़ार (रात बारह बजे के बाद ब्रम्हा-मुहूर्त से पूर्व पढ़ी जाने वाली नमाज़ें) भी थे।

बड़े हाफिज्जी अपनी तकरीरों में सभी मुसलमानों को पांच वक़्त नमाज़ पढ़ने की सलाह दिया करते। रोज़ा, ज़क़ात आदि फ़रायज़ पूरा करने का हुक्म देते। कहते कि

नमाज़ की पाबंदी इंसान को सारी बुराईयों से रोकती है। नमाज़ दीन का अहम सुतून यानी स्तम्भ होता है। इन्हीं पंच-वक्ता नमाज़ों के स्तम्भ पर इस्लाम की इमारत खड़ी है। नमाज़ की पाबंदी न करके यदि मुसलमान अन्य दूसरी इबादतें करे तो उसका उद्धार नहीं होता। अल्लाह-तआला और उसके पैगम्बर को नमाज़ सबसे अजीज़ है। लेकिन मौलाना क़ादरी के आने के बाद मुसलमानों की ज़िन्दगी में नमाज़ की जगह मीलाद की महफ़िलें रौनक होने लगीं। लोग अपने घरों में और मस्जिदों में मीलाद की महफ़िलें सजाने लगे। देर रात तक मीलाद और दरूदो-सलात होता और सुबह की नमाज़ के वक्त मस्जिदों से नमाज़ी ग़ायब होने लगे।

इन मीलादों के ज़रिए मौलाना क़ादरी अच्छी आमदनी करने लगा।

इसके अलावा मौलाना झाड़-फूंक भी किया करता। अशिक्षा, गरीबी और असुविधाओं से जूझते निम्न-मध्यम वर्गीय मुसलमान औरतों और बच्चियों पर जिन्न और खब्बीस के साए आने लगे। मौलाना के झाड़-फूंक से जाहिल औरतें और बच्चियां ठीक होने लगीं।

लाइलाज बीमारियों को शैतानी हरकत बता कर मौलाना लम्बी रकम एंेठता और कहता कि शैतान या जिन्न बहुत तगड़ा है, इसके लिए मुझे चिल्ला करना होगा। यानी चालीस दिनों तक साधना करनी होगी तब जाकर जिन्न से पीछा छूटेगा। लोग उसकी बातों में आ जाते और मौलाना के लिए नज़राना जुटाने के लिए जी तोड़ मेहनत करते। मौलाना क़ादरी के पैर कस्बे में जब से पड़े, मुहल्ले के मुसलमान दो गुट में बंट गए। मौलाना क़ादरी, बात-बे-बात जामा मस्जिद के बड़े हाफिज्जी की ग़ल्तियां निकाला करता और उन्हें नीचा दिखाने की कोशिशें करता।

वह चाहता था कि मस्जिद में बड़े हाफिज्जी बुज़ुर्गवार की इज़्ज़त कम हो जाए।

वो उनके नमाज़ पढ़ाने के तरीके की निंदा किया करता। बड़े हाफिज्जी के तलफ्फ़ुज़ और तिलावत की ख़ामियां गिनाया करता।

वो चाहता था कि बस्ती के लोगों में उसके इल्मो-हुनर की धाक जम जाए तो फिर पौ बारह---

बड़े हाफिज्जी गण्डा-तावीज़, झाड़-फूंक आदि से जाहिल मुसलीमानों को बरगलाया नहीं करते थे। वे कहते थे कि बीमार पड़ने पर अल्लाह से रहम की दुआ मांगो। कसरत से

नमाज़ पढ़ो। कुरआन शरीफ की तिलावत करो।
यदि फिर भी बीमारी ठीक न हो तो कस्बे के डॉक्टर के पास ले जाओ। इन्शाअल्लाह शिफ़ा मिलेगी---
बड़े हाफिज्जी अक्सर अपनी तकरीरों में कहते कि अल्लाह को पाने के लिए कोई आसान नुस्खा नहीं है। इसके लिए जितनी इबादत की जाए कम है। इंसान को ज्यादा से ज्यादा समय अल्लाह की गुणगान करना चाहिए और बुराईयों से बचना चाहिए। पांच-छह सौ मुसलीमानों की ऐसी बस्ती का इकलौता धर्मगुरू बनने का ख़्वाब मौलाना क़ादरी को सताया करता था।
मस्जिद के रख-रखाव और इमाम-मुअज्जिन की तनख़्वाह वग़ैरा के लिए बस्ती के मुसलमान चंदा दिया करते थे। बड़े हाफिज्जी की देख-भाल में मस्जिद के सहन में एक मदरसा भी चलाया जाता था जिससे बच्चों की दीनी-तालीम मिल जाती थी।
इसका मतलब ये था कि यदि मौजूदा बड़े हाफिज्जी को उखाड़ फेंका जाए तो मौलाना क़ादरी के दिन फिरते देर न लगे।
इसीलिए मौलाना क़ादरी, बड़े हाफिज्जी के ख़िलाफ़ अवाम को भड़काया करता और अपना उल्लू सीधा किया करता था।
कम पढ़े-लिखे, धर्म-भीरू, आस्थावान आदमियों और जाहिल औरतों को मौलाना क़ादरी उकसाया करता कि नमाज़-रोज़ा से कुछ नहीं हासिल होता। दोनो जहान में निजात पाने के लिए किसी भी तरह अपने घरों में मीलाद-शरीफ की महफिल सजाओ तो बरकत टपके।
मीलाद-शरीफ के आयोजन का मतलब था कि कम से कम चार-पांच सौ रूपए की चपत। मीलाद-शरीफ के खात्मे पर बांटी जाने वाली शिरनी (प्रसाद) लाओ। इत्र-फुलेल, अगरबत्ती की व्यवस्था करो। माईक-बाजा लगवाओ। कव्वालियों के कैसेट बजाओ। मीलाद के बाद खाने की दावत न दो तो लोग नहीं जुटते। खाली मिलाद सुनने क्यों आएं लोग। सो तीस-चालीस आदमियों के लिए गोश्त-पुलाव-ज़र्दा का बंदोबस्त?
मीलाद-शरीफ पढ़ने का नज़राना कम से कम एक सौ एक रूपए मौलाना क़ादरी के लिए---
मैलाना क़ादरी की आवाज़ बड़ी दिलकश थी।

वह जब नात-शरीफ़ पढ़ते तो लगता जैसे मुहम्मद रफी बिना संगीत के गीत गा रहे हों।
उनके अधिकांश नातों की तर्ज़ पुराने फिल्मी गानों की पैरोडी टाईप हुआ करती थाीं-
सलीमा जानती है वे गाने जिन की धुन पर मौलाना क़ादरी नात तैयार करते थे।
जैसे, ‘गुज़रा हुआ ज़माना, आता नहीं दुबारा, हाफ़िज़ खुदा तुम्हारा’, ‘सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था, आज भी है और कल भी रहेगा’, या ‘मुहब्बत की झूठी कहानी पे रोए’ आदि गानों की तजर् पर नात तैयार की जाती थीं, जो सुनने में बड़ी मधुर लगतीं।
इसीलिए गरीबी-बेकारी और अशिक्षा से जूझते बस्ती के मुसलमानों में उनके नातिया कलाम लोकप्रिय होने लगे थे।
अम्मी अक्सर मौलाना क़ादरी के नातिया कलाम को गुनगुनाया करतीं।
मौलाना क़ादरी अब्बू से मिलने एक बार सलीमा के घर आए।
अब्बू तो काम पर गए थे।
सलीमा तब छोटी थी।
सलीमा ने घर का दरवाज़ा खोला और मौलाना क़ादरी की फितरती आंखें देख उसने उसे ये कह कर टरकाना चाहा था कि अब्बू काम पर गए हैं। घर में कोई नहीं है।
अम्मी उस वक़्त नहा रही थीं।
जाने कैसे अम्मी ने जान लिया कि मौलाना आया है।
उनकी आवाज़ आई-“सलीमा, मौलाना साहब को टपरिया में बिठाओ!”
तब आंगन और सड़क के बीच में जहां आज चक्की है, वहां पर टट्टर से घेर कर खपरैल की छप्पर वाली एक बैठकी बनाई गई थी। अब्बू उसे टपरिया कहा करते थे। उसमें एक चारपाई डली रहती थी।
अब्बू को बकरियां और मुर्गियां पालने का शौक़ था। रात में बकरियां उसी जगह बांधी जाती थीं और मुर्गियों को बड़ी-बड़ी टोकरियों में ढांप कर रखा जाता था।
मौलाना क़दरी टपरिया में बिछी चारपाई पर आ बैठे। नन्ही सलीमा ने ग़ौर किया कि उनकी निगाहें उसे घूर कर रही हैं। जाने क्यों सलीमा को मौलाना क़ादरी की निगाहें ठीक नहीं लगीं।

गर्मियों के दिन थे। सुबह के दस-ग्यारह बजे होंगे, लेकिन लगता ऐसे था जैसे दुपहर के दो बज रहे हों। गर्मी बेहद थी। मौलाना क़ादरी कंधे पर डाली गई हरे-सफेद चैखाने वाले गमछे से पंखा करने लगे। उनकी निगाहें बार-बार झोंपड़ी के अंदर का जायज़ा लेती दिखलाई पड़ रही थीं।

अम्मी उस समय आंगन के कोने में बोरे से घेर कर बनाए गए गुसलखाने में नहा रही थीं।

अम्मी की एक बहुत ही गंदी आदत थी, जिससे सलीमा को काफ़ी चिढ़ हुआ करती थी। होता ये था कि अम्मी जब भी गुसलखाने से नहाकर बाहर निकला करतीं, उनके गीले जिस्म पर सिर्फ लहंगा और ब्लाउज़ हुआ करता था। सीने पर वह गीला गमछा डाल कर गुसलखाने से झोंपड़ी की तरफ लगभग भागते हुए घुसा करती थीं।

इतने कम समय में भी उनकी नारी-देह की भरपूर नुमाईश हो जाया करती थी।

उस दिन भी ऐसा ही हुआ।

अम्मी को जबकि मालूम था कि बाहर टपरिया में मौलाना क़ादरी आकर बैठे हुए हैं। फिर भी वे गुसलखाने से अपने उघड़े जिस्म को सहेजते भागती हुई झोंपड़ी के अंदर घुसीं, लेकिन मौलाना क़ादरी की निगाहों को देर तक सलीमा ने उस रास्ते का पीछा करते पाया।

कपड़े पहन कर, अपने गीले बालों पर गमछा लपेटे अम्मी जब बाहर आईं तो बला की ख़ूबसूरत लग रही थीं। गर्मी की शिद्दत से मौलाना बेचैन थे।

अम्मी ने मौलाना क़ादरी की खिदमत के लिए या सलीमा को वहां से टरकाने के लिए सलीमा को नींबू का शर्बत बना लाने को कहा।

सुरैया और रूकैया बाहर खेलने गई थीं।

सलीमा शर्बत बनाने चली गई।

इस बीच पता नहीं अम्मी और मौलाना क़ादरी में क्या-क्या बातें होती रही थीं।

मौलाना क़ादरी फिर अक्सर उनके घर आने लगा।

अब्बू सुबह काम पर निकलते तो फिर देर रात घर वापस आते। अगर काम का दबाव ज़्यादा रहा तो फिर पूरी रात घर न आते।

मौलाना क़ादरी आते तो जाने क्यों नन्हीं सलीमा को बहुत बुरा लगता था।

लगता भी क्यों न! वह बच्ची थी तो क्या अच्छाई-बुराई की कुदरती समझ तो हर उम्र में इंसान को होती है।
मौलाना क़ादरी ने एक दिन उसे बड़े प्यार से अपने पास बुलाया था।
वह शर्माते-शर्माते उनके पास गई।
मौलाना ने उसे अपनी गोद पर बिठाया और उसके गाल को चूमा।
सलीमा ने झट से अपने गाल साफ किए। मौलाना ने उसके गाल पर थूक लगा दिया था। सलीमा को इस तरह प्यार करने वाले इंसान क़तई पसंद न थे। वह तत्काल उनकी गोद से उछलकर भाग गई थी।
सलीमा की अम्मी कब मौलाना की दीवानी बन गईं उन्हें पता न चला---
सलीमा को वो दिन आज भी याद है जब उसने अपनी अम्मी और मौलाना क़ादरी को अन्दर वाले कमरे में अब्बू के बिस्तर पर गुत्थम-गुत्था देखा।
अम्मी नीचे दबी हुई थीं।
मौलाना अम्मी पर सवार थे।
अम्मी के गले से दबी-दबी ऊ--- आं--- की आवाज़ें निकल रही थीं।
वो माज़रा देख सलीमा डर गई।
वह शबे-बरात का दूसरा दिन था।
उसकी समझ में जब कुछ न आया तो वह दौड़ी-दौड़ी हाजी साहब की चक्की जा पहुंची। वहां अब्बू तेल पेरने वाली मशीन से सरसों का तेल निकाल रहे थे। सलीमा को आया देख उन्होंने मशीन का स्विच आॅफ किया और सलीमा को अपने पास बुलाया।
सलीमा की सांसें फूली हुई थीं।
उसने फुसफुसाते हुए अब्बू को घर का आंखों देखा हाल कह सुनाया।
अब्बू भागे-भागे सलीमा के साथ घर आए।
देखा कि सुरैया और नन्हीं रूकैया आंगन में एक चारपाई पर सोई हुई हैं और झोंपड़ी का दरवाज़ा भिड़का हुआ है।
अब्बू ने दबे पांव दरवाज़ा खोला तो भीतर का हाल देख दंग रह गए।
अम्मी को काटो तो खून नहीं और मौलाना क़ादरी झटपट कपड़े उल्टे-सीधे पहन भाग गया।

अब्बू कहें तो कहें किससे।
उन्हें ज़बरदस्त सदमा पहुंचा।
वे फिर कई दिनों चक्की नहीं गए।
अम्मी और अब्बू में बोल-चाल बंद हो गई।
उधर एक दिन सलीमा बाहर खेल रही थी कि उसे मौलाना क़ादरी दिखलाई दिए।
सलीमा ने देखा कि अम्मी घर के बाहर टपरिया तक आई हैं। फिर मौलाना क़ादरी और अम्मी में जाने क्या बातें हुईं वह जान न पाई।
उसने सोचा था कि वह अब्बू को इस मुलाक़ात के बारे में बताएगी, लेकिन वह खेल की धुन में भूल गई।
सलीमा को याद है कि उस रात अम्मी ने बड़े शौक़ से खाना बनाया था।
घर में सब्जियां नहीं थीं।
हां, आलू की रसेदार सब्ज़ी में अम्मी ने आमलेट के टुकड़े तैरा दिए थे। आमलेट जब शोरबे में तर हो जाता है तो बहुत अच्छा लगता है। अपनी दोनों बहनों के साथ सलीमा ने बहुत चटख़ारे लेकर उस सब्ज़ी खाई थी।
सुबह उसे अब्बू ने सलीमा को जगाकर अम्मी के बारे में पूछा।
सलीमा उनींदी क्या बताती?
उसने सोचा कि अम्मी शायद टहलने गई हों, कुछ देर में आ जाएंगी। सूरज आसमान पर चढ़ता गया लेकिन अम्मी न आईं। सुरैया और रूकैया अम्मी-अम्मी की रट लगाकर खूब रो रही थीं। सलीमा ने अब्बू के कहने पर मुहल्ले में आस-पास अम्मी को खोज देखा। कुछ पता न चला।
दुपहर में ज़ुहर की अज़ान के वक़्त अब्बू घर आए।
उनके क़दम लड़खड़ा रहे थे।
उन्होंने पी रखी थी।
सलीमा उन्हें देख कर रो पड़ी।
उसे अम्मी की याद सता रही थी।
अम्मी जाने कहां चली गई हैं।
अब्बू लड़खड़ाती ज़ुबान से अपनी बीवी को गाली बक रहे थे, साथ-साथ मौलाना क़ादरी

की दइया-मइया एक किए हुए थे।
घर में तीन प्यारी बेटियां और एक मेहनत-कश शौहर को छोड़ कर अपने आशिक मौलाना क़ादरी के साथ कहीं भाग गई थीं।
तब जाकर नन्हीं सलीमा को समझ में आया कि आखिर चक्कर क्या है?
उसने अब्बू को बताया भी कि अब्बू, कल दुपहर के समय मौलाना क़ादरी अम्मी से मिलने आए थे।
अब्बू ने उसे घूर कर देखा था, फिर वह निढाल होकर टपरिया पर पड़ी चारपाई पर पसर गए थे।
सलीमा उस दिन अचानक एक ज़िम्मेदार औरत में तब्दील हो गई थी।
वह लकड़ी का चूल्हा सुलगाकर काली चाय बनाना जानती थी।
उसने सुरैया और रूकैया को चुप रहने का इशारा किया और रसोई में जा घुसी थी।
बड़ा अजीब लगा था बिना अम्मी के रसोई-घर---
चूल्हा अम्मी रात ही साफ़ करके गई थीं।
उसने एक कोने में रखा आटे का कनस्तर टटोला। उसमें आधा कनस्तर आटा था।
फिर उसने चूल्हे के पास रखे कई डिब्बों को खोलकर देखा। किसी में शक्कर, किसी में चायपत्ती, किसी में नमक और किसी में गरम मसाला था।
उसने आटा माड़ने वाली थाली लेकर पहले अंदाज से आटा गूंथ लिया।
फिर लकड़ी सुलगाने लगी कि अब्बू आ गए।
वह माथा पकड़ कर वहीं सलीमा के पास पीढ़े पर बैठ गए।
आग सुलग जाने पर सलीमा ने तवा चढ़ाकर उसे गर्म होने दिया।
सुरैया और रूकैया तब तक उसके पास आ चुकी थीं
रूकैया तो अब्बू की गोद में दुबक गई, लेकिन सुरैया अपने नन्हे-नन्हे हाथों से आटे की लोई बनाने लगी।
सलीमा ने बेलन-चैकी पर रोटी जो बेलनी शुरू कीं तो पतली-मोटी, टेढ़ी-मेढ़ी रोटियां फटाफट बनने लगीं।
पहली रोटी उसने शक्कर के साथ रूकैया को खाने को दी।
अब्बू ने रोटी के अंदर शक्कर भरकर उसका ‘रोल’ बना दिया।

रूकैया मरभुक्खों की तरह दांत से काट-काट कर गपागप रोटी खाने लगी तो अब्बू की आंखों में आंसू आ गए।
उन्होंने जान लिया कि उनकी बड़ी बिटिया सलीमा 'हुशियार' हो गई है और वह अपनी बहनों की देखभाल कर लेगी।

जो दिखता है, वही बिकता है----

सलीमा ने कमसिनी में ही अपने जिस्म को एक उत्पाद बनाने की कला सीख ली थी। ये एक ऐसी कला है जो किसी विश्वविद्यालय की डिग्री की मुहताज नहीं है। कुदरतन लड़कियों बहुत जल्द अपने जिस्म के प्रोडक्ट-वैल्यू को जानने लग जाती हैं। वैसे तो लड़कियांे को उत्पाद में बदलने की मुहिम या षडयंत्र सारी दुनिया में चली हुई है।

वो चाहे फैशन के माध्यम से हो, चाहे जिस्म-ट्रेफिकिंग से हो, चाहे सिनेमा, बार, होटलों के माध्यम से हो।

नए-पुराने शहरों में कोठे और जिस्म की मंडियों के लिए कितनी ललक रहती है आम-शहरियों के मन में। नगर-वधु और देवदासियों के बहाने भी लड़कियों को एक उत्पाद में बदलने के लिए प्रथा तो सदियों पुरानी है ही। आज के दौर में जब हम विश्व-ग्राम के नागरिक हो गए हैं, जब दूरियां कम हो गई हैं, जब सूचना-क्रांति का महाविस्फोट हो चुका है तब यही लड़कियां काॅल-गर्ल के रूप में समाज की अवांछित ज़रूरतों को पूरा करती हैं और पोर्न-बाज़ार एक महा-बाज़ार बन चुका है।

एफटीवी के रैम्प्स में चैबीस घण्टे कैट-वाॅक करने वाली कमसिन लड़कियांे को सबने देखा है। ये लड़कियां किसी आसमान से टपकी तो हैं नहीं। ये कमसिन हूर-परियां बेशक किसी मां-बाप की औलाद हैं। किसी धर्म-जाति-समुदाय विशेष की हैं, किसी न किसी देश की नागरिकता भी रखती हैं। फिर ऐसा कैसे होता है कि जिस्म की नुमाईश करती इन लड़कियों को सारी दुनिया में ज़बर्दस्त लोकप्रियता दी जा रही है।

अमेरिकन पोर्न-स्टार सनी-लियोन को टीवी और भारतीय सिनेमा ने कितना सम्मान दिया है। जबकि मोबाईल-स्मार्टफोन के इस ज़माने में बच्चा-बच्चा सनी-लियोन के करतबों के बारे में जानता है। उसे कपड़ों में तो सिर्फ भारतीय सिनेमा में देखा गया है।

यही कारण है कि सम्पूर्ण गोरेपन का दावा करने वाली क्रीम भारतीय बाज़ारों में टनों में बिकती हैं।

फैशन-बाज़ार और उत्पाद के अंतर्सबंधों की उपज हैं ‘सुंदरी-प्रतियोगिताएं’। आजकल तो स्कूल-सुंदरी, का्ॅलेज-सुंदरी, ग्राम-संुदरी, तहसील-सुंदरी, नगर-सुंदरी, जिला-सुंदरी, प्रदेश-सुंदरी, मेट्रो-सुंदरी और विश्व-सुंदरी की प्रतियोगिताएं जन-स्वीकार्य हैं। एडवांस्ड मां-बाप अपनी बेटियों को प्रोत्साहित करते हैं कि वे सुंदर दिखें, स्लिम रहें और सौंदर्य-प्रतियोगिताओं में भाग लें। हां, पुरातनपंथी मां-बाप भले से न चाहें कि उनके घरों की लड़कियां ऐसे कार्यक्रमों कां हिस्सा बनें। यदि ऐसा हुआ तो लड़कियों की टांगें तोड़ दी जाएंगी। दूसरे की लड़कियां कुछ भी करें, उन्हें देखने-भोगने में तो आनंद ही आनंद है।
मज़े की एक बात और ये भी है कि वस्तु चाहे पुरूष-उत्पाद हो, उसके विज्ञापन में एक या कई अर्धनग्न लड़कियां ज़रूर नज़र आएंगी।
वाक़ई----जो दिखता है, वही बिकता है।

s

कोई यकीन करे या न करे, लेकिन ये सच है कि नन्ही सलीमा जब कक्षा आठ की छात्रा थी, तभी उसने स्त्री-जिस्म के पोशीदा राज जान लिए थे।
ये भी कोई उम्र होती है, ऐसे राज़ जानने की?
लेकिन क्या करें इस समाज का, जहां लोग लड़की को घूर-घूर कर जवान बना देते हैं।
ऐसा नहीं कि सलीमा बहुत सुंदर थी।
ऐसा नहीं कि सलीमा की काया खूबसूरत और देह गदराई हुई थी।
बस वो एक लड़की थी।
सिर्फ लड़की----.
और लड़की होना ही तो उसका दोष था।
लड़की और वो भी निर्धन परिवार की---
ग़रीबी की मार खाई सूखी सी काया, पतले-दुबले हाथ-पैर, कंकाल-नुमा चेहरे पर चुंधियाई आंखें और पिचके गाल से बाहर को निकले डेढ़ दांत---
इतने बेरौनक, कुरूप, बदरंग जिस्म की मालकिन सलीमा किसी भी कोण से आकर्षक

नहीं थी। लेकिन फिर भी लोलुप समाज ने सलीमा की कुरूपता में भी छुपी चमक खोज ली।

देह के भौतिक, रासायनिक और जैविक स्वरूप की जानकारी का पाठ पढ़ाने वाले पुरूष को सलीमा भला कैसे भूल सकती है।

वह महाशय गंगाराम सर ही तो थे।

उनका एक पैर कुछ छोटा था, जिस के कारण उनकी चाल में थोड़ी लचक थी।

इसीलिए बच्चे और बड़े पीठ पीछे उन्हें 'तैमूरलंग' कहा करते थे।

वैसे मशहूर है ये कहावत की ऐंचा-ताना, लूला-लंगड़ा आदमी ऐबी होता है और लंगोट का ढीला भी।

गंगाराम सर के सिर पर खूब घने बाल थे, ऐसा लगता जैसे विग लगाए हुए हों।

खलनायक में संजय दत्त जिस तरह पीछे की तरफ बढ़े बाल रखा था, कुछ वैसा ही हेयर-स्टाईल था गंगाराम सर का।

उनकी आंखें किचड़याई रहतीं।

वह गणित पढ़ाते थे।

पता नहीं क्यों लड़कियों को गणित विषय बहुत डराता है----सलीमा भी गणित से डरती थी और अक्सर गणित में शून्य पाती थी----वैसे शून्य गणित में सबसे महत्वपूर्ण अंक होता है लेकिन सलीमा के लिए तो एक अभिशाप था शून्य----

इस शून्य से पीछा छुड़ाने के लिए सलीमा ने एक दिन गंगाराम सर की बात मान ही ली----.

द ब्यूटी एण्ड द बीस्ट

सलीमा को स्कूल का माहौल अच्छा न लगता और ख़ासकर गंगाराम सर तो एकदम भी नहीं ।
गंगाराम सर नगर के खाते-पीते घरों बच्चों की तरफ ज्यादा ध्यान दिया करते।
ग़रीब बच्चों का मज़ाक उड़ाया करते थे।
सलीमा ग़रीब थी, पढ़ाई में कमज़ोर थी और मुसलमान भी थी यानी तीनों दुर्गुणों से भरपूर थी सलीमा।
कक्षा में सबसे पीछे वाली सीट पर बैठने वाली सलीमा।
अक्सर गंगाराम सर पिछली बेंच के बच्चों को खड़ा कर कठिन-कठिन प्रश्न पूछा करते और ज़ाहिर है कि ऐसे कठिन प्रश्नों के जवाब न मिल पाता।
नतीजतन गंगाराम सर छड़ी मार-मार कर उनके हाथ लाल कर देते थे।
सलीमा अक्सर उनसे पिटती थी।
कभी-कभी गंगाराम सर छड़ी से न मार कर हाथों से उसे मारते।
बाद में उसने जाना कि गंगाराम सर पीटने के बहाने उसकी पीठ, कंधे और बांह की थाह लिया करते हैं। अंदाज़ लगाते हैं कि कितनी जान है सलीमा में----
फिर उसे लगता कि हो सकता है यह उसका वहम हो।
वह किसी से कुछ न कहती।
सलीमा के बगल में बैठती थी मुमताज बानो।
मुमताज के अब्बू आॅटो-चालक थे। उनकी अपनी आॅटो थी। मुमताज की आर्थिक दशा सलीमा से बेहतर थी। उसके कपड़े ठीक-ठाक रहते और वह थोड़ा स्टाईल भी मारती, मुस्लिम होने के कारण वह सलीमा के साथ बैठा करती थी।
सलीमा स्नेह की भूखी थी।
मुमताज़ बानो थी तो खाते-पीते घर की, लेकिन उसके दिमाग में गोबर भरा था।
हां, सलीमा की तुलना में वह साफ-सुथरे कपड़े पहन कर आया करती थी।
बाल करीने से काढ़े हुए रहते।

उसके बदन पर मैल न होता और न ही गाल पर मच्छर काटने के निशानात!
सलीमा ठहरी अपने लाचार-बेज़ार अब्बू की बिटिया।
अम्मी होतीं तो क्या उसके बाल यूं लटियाए रहते, दांत मैले रहते और चेहरा बेनूर होता!
जब देखो तब सलीमा अपने रूखे बालों को खबर-खबर खजुआते रहती।
लड़कियां उससे दूर रहतीं कि कहीं उनके सिर में भी जूएं न पड़ जाएं।
एक दिन जब गंगाराम सर ने गणित के लाभ-हानि वाले पाठ का एक सवाल उससे पूछा तो वह आदतन कुछ बता न पाई।
गंगाराम सर ने छड़ी से मार-मार कर उसकी हथेली लाल कर दी।
सलीमा को उस मार के दर्द से कोई तकलीफ़ न हुई, लेकिन घर में पढ़ने के लिए थोड़ा भी वक्त न निकाल पाने की मजबूरी से उसे दुख हुआ।
वह रोने लगी।
फिर उसे अपनी अम्मी की याद आई।
वह होतीं तो शायद ऐसे बुरे दिन न देखने होते। अम्मी उसका तनिक भी ख़्याल रखतीं तो क्या वह ऐसी मैली-कुचैली दिखती।
तब हो सकता है कि कक्षा के बच्चे और शिक्षक उससे नफ़रत न करते।
वह भी घर में पढ़ती तो रोज़ाना की इस मार-डांट से बची तो रहा करती।
और वह हिचकियां ले-लेकर रोने लगी।
बगल में बैठी मुमताज़ नहीं जानती थी कि इस हालत में सलीमा को कैसे चुप कराया जाए।
सलीमा टेसुए बहाती रहीं तो गंगाराम सर चिंतित हुए।
वह पास आए और प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरते हुए कहा--''छुट्टी होने पर तुम स्टाफ-रूम में आकर मुझसे मिलना।''
गंगाराम सर ने जो उसके सिर पर हाथ फेरा उससे उसे कुछ सांत्वना मिली।
मुमताज़ ने उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर सहलाया।
सलीमा की सुबकियां कम हुईं।
छुट्टी होने पर बस्ता समेट सलीमा कक्षा से बाहर निकली। उसके दिमाग में गंगाराम

सर की बात घूम रही थी कि तुम स्टाफ-रूम में आकर मुझसे मिलो।
सलमा के क़दम स्वतः स्टाफ-रूम की तरफ उठे।
हेडमास्टर साहब के आफिस के बाहर चपरासन बैठी स्वेटर बुन रही थी।
आफिस के बगल में लाईब्रेरी थी फिर उसके बाद स्टाफ-रूम।
सलीमा ने परदे की झिर्रियों से कमरे के अंदर ताका।
गंगाराम सर बैठे हुए थे।
जैसे वह सलीमा का इंतज़ार कर रहे हों।
सलीमा परदा हटाकर खड़ी हो गई।
गंगाराम सर ने उसे अंदर बुलाया और जब वह उनके पास पहुंची तो उसकी निगाहें झुकी रहीं।
गंगाराम सर ने उससे कहा-''मेरी तरफ देखो, मैं तुम्हें मारता इसलिए नहीं कि मैं तुम्हारा दुश्मन हूं। मुझे हमेशा यही लगता है कि तुम्हें पढ़ना-लिखना चाहिए। लेकिन मैं तुम्हारी मजबूरी समझता हूं। तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारे बाप को जानता हूं। बिचारा ग़रीब मजदूर है। चक्की में काम कर किसी तरह बच्चों का लालन-पालन करता है। तुम्हारे बाप से बात करूंगा कि वह तुम्हें मेरे घर पढ़ने भेज दिया करें। मैं तुम्हें अलग से पढ़ा दिया करूंगा। ऐसा पढ़ा दूंगा कि एक दम 'फस्र्ट-क्लास' पास हो जाओगी।''
सलीमा चित्र-लिखित सी उनकी बात सुनती रही।
फिर उन्हें नमस्कार कर कमरे से बाहर निकल आई।
गंगाराम सर ने उससे कहा कि रविवार के दिन अपने घर का काम-काज निपटा कर सलीमा उनके घर आ जाया करे।
दुपहर में अपने आराम करने के समय पर वह उसे एक-डेढ़ घण्टे पढ़ा दिया करेंगे।
सलीमा ने घर आकर अब्बू को स्कूल की बात बताई।
अंधे को क्या चाहिए, दो आंख!
अब्बू गंगाराम सर को जानते थे।
उन्होनें सोचा शायद इस तरह बिटिया पढ़-लिख जाए----
उन्होंने सलीमा को इजाज़त दे दी।

s

रविवार का दिन।

गंगाराम सर के घर सलीमा को पढ़ने जाना था।

जल्दी-जल्दी उसने घर के काम-काज निपटाए।

उसके बाद उसने सोचा कि अच्छे से साफ-सुथरा हो लेना चाहिए।

इसलिए सलीमा नहाने के लिए आंगन के कोने में बने गुसलखाने में चली गई।

टाट-बोरे के टुकड़े, चटाई, बांस की खपच्चियां आदि से जोड़-तोड़ कर बनाया गया बिना छत का गुसलखाना।

जिसके अंदर पत्थर की एक बड़ी पंचकोना चीप बिछी हुई थी।

इतना बड़ा पत्थर का टुकड़ा कि एक आदमी आसानी से बैठ कर नहा सके और कपड़े भी धो-फींच ले।

चीप के पास ही, एक कोने पर आधा कटा ड्रम का टुकड़ा रखा था।

उस ड्रम में सुबह-सुबह सलीमा या फिर रूकैया बाहर चांपाकल से पानी लाकर भर दिया करती थीं।

उसी से घर का निस्तार चलता।

उसके बाद यदि उसमें पानी घटता तो तत्काल बाहर से पानी लाना पड़ता था।

गुसलखाना के साथ वह घिरी हुई पर्देदार जगह पेशाब-घर का भी काम करती थी।

मुसलमानोेें में पेशाब करने के बाद पानी इस्तेमाल करना ज़रूरी होता है, वरना जिस्म में नापाकी बनी रहती है। इसलिए ड्रम में पानी हमेशा उपलब्ध रहता।

अम्मी ने बेटियों को पाक-साफ रहना सीखाया था।

अम्मी कहा करती थीं कि हमेशा ‘इस्तिंजे’ से रहा करो, जाने अल्लाह-पाक कब और किस हालत में इंसान की रूह कब्ज़ कर ले!

हां, महीने के उन ख़ास दिनों को छोड़कर जब किसी औरत को नापाक रहना ही पड़ता है, बाकि दिन जिस्म को पाक-साफ रखा जाए।

अम्मी बताया करती थीं कि इस नामुराद घर में उनकी शादी से पहले गुसुलखाना जैसी

चीज़नहीं थी। बड़े जाहिल थे सब ससुराल वाले।
अम्मी बताया करतीं कि तेरे अब्बू और दादा बाहर खुले में नहाया करते थे।
औरतों को नहाना होता तो चारपाईयों की ओट बनाकर अस्थाई गुसलखाना बना लिया जाता था।
बड़ा अजीब लगता था उन्हें।
अम्मी ने जब देखा कि ये लोग नहीं बदलेंगे, तब उन्होंने स्वयं टूटी-फूटी चीज़ें जोड़-जाड़ कर आंगन के कोने को गुसुलखाने की शक्ल दी थी।
अम्मी हमेशा अपनी ससुराल को कोसा करतीं।
अपने भाईयों और भौजाईयों की लापरवाहियों का रोना रोतीं, जिन्होंने उनकी शादी इन कंगालों में करके अपने सिर से बला टाली थी।
कभी वह अपनी किस्मत को फूटा हुआ बतातीं।
अल्लाह-तआला ने उनकी तकदीर इतनी बुरी क्यों लिखी, इस सवाल का जवाब अम्मी हमेशा परवरदिगार से पूछा करतीं।
सलीमा की अम्मी बताया करती थीं कि उनके मां-बाप अच्छे खाते-पीते लोग थे।
सन् 47 में विभाजन के समय उनके मां-बाप बांग्लादेश चले गए।
अम्मी तब बच्ची थीं और बड़े मामू के पास ही रहती थीं।
बड़े मामू कलकत्ता की जूट-मिल में मिस्त्री का काम करते थे। अच्छी आमदनी थी उनकी। खिदिरपुर की सीमा पर उन्होंने एक कट्ठा ज़मीन खरीद कर वहां मकान भी बना लिया था।
अम्मी बतातीं कि उनके बड़े भाई बहुत रहमदिल इंसान थे लेकिन भाभी जैसे कड़वा-करैला। ऐसी ज़हर बुझी बात कहतीं कि बस कलेजा जल जाता। फिर भी दिन ठीक ही गुज़र रहे थे।
तभी बड़े मामू को टीबी के कारण मौत हो गई और उनके घर के हालात बदतर होते चले गए।
मुमानी के अत्याचार बढ़ने लगे तो अम्मी के छोटे भाई उन्हें अपने साथ बिलासपुर लेते आए।
वह बिलासपुर में रेल्वे इंजिन चालक के पद पर कार्यरत थे।

उन्होंने जैसे-तैसे अम्मी की शादी इब्राहीमपुरा में तय कर दी।
तब अम्मी मात्र तेरह या चैदह बरस की थीं।
बच्ची ही तो थीं, जब उनपर ज़िम्मेदारियों का बोझ आन पड़ा था।
अम्मी को अपने पूरे माईके वालों से और अपने ससुराल वालों की ग़रीबी और जहालत से सख़्त चिढ़ थी।
इसीलिए अम्मी जब तक इस घर में रहीं बेगाना बन कर रहीं।
उन्हें घर की किसी भी चीज़ से भावनात्मक लगाव न था। यहां तक कि अपनी बच्चियों से भी नहीं।
और एक दिन ऐसा भी आया कि घर के सभी सदस्यों को अचम्भित छोड़ कर अम्मी जाने कहां चली गईं।
अम्मी तो अम्मी आखिर अम्मी थीं----उनकी गैर-मौजूदगी में सलीमा उन्हें याद कर आंखें नम कर लिया करती।
अम्मी के ज़माने में गुसलखाने मंे रखा ये ड्रम बहुत रूतबे वाला हुआ करता था।
घरेलू-इस्तेमाल के लिए अब्बू जैसे-तैसे बाहर से पानी लाकर उस ड्रम में भरा करते थे, तब कहीं जाकर उन्हें हाजी जी की चक्की में ड्यूटी बजाने का हुक्म हुआ करता था।
अब्बू अम्मी से डरते बहुत थे।
सर्दियों में धूप की किरनें गुसलखाने के ड्रम पर सीधे पड़ा करतीं।
यही किरनें गीज़र का काम करतीं।
सलीमा और सुरैया चांपाकल से पानी लाकर उस ड्रम में डाल देती जो दुपहर होते-होते कुनकुना-गर्म हो जाता।
सलीमा ने पानी छूकर देखा----पानी अब उतना ठण्डा नहीं था----कि बदन पर पड़े तो सिहरन हो।
सलीमा नहाने के लिए सिर्फ समीज पहने पत्थर की चीप पर बैठ गई और उसने सबसे पहले अपने पैरों की सफाई करने लगी।
एड़ियांे पर मैल की मोटी परत जम कर सख्त हो चुकी थी।
बिना पत्थर से रगड़े मैल न छूटता।
उसने मैल छुड़ाने वाले पत्थर के टुकड़े से एड़ियों का मैल निकाला।

साबुन के नाम पर कपड़ा धोने वाला साबुन था वहां।
नारियल का बूच था जिससे बदन का मैल रगड़ कर कर साफ किया जाता था।
सलीमा ने कपड़े धोने वाले साबुन को सिर पर मला।
सिर से इतना मैल निकला कि पूरा गुसलखाना काला हो गया।
वह चाहती थी कि सारे बदन की रगड़-रगड़ कर सफाई करे, लेकिन गुसलखाना बिना छत का था। उनके गुसलखाने से हाजी रफी की छत दिखलाई देती थी। हाजी साहब का नौकर ईदू अक्सर छत पर आकर गुसलखाने की टोह लिया करता।
सलीमा ने एहतियातन हाजी रफी साहब की छत पर निगाह डाली और अपने बदन को खुद से छुपाते हुए अच्छी तरह पूरे बदन पर साबुन मल लिया।
फिर नारियल के बूच पर साबुन मल कर झाग बनाया और हाथ-कुहनी के मैल धो डाले।
जब वह नहा कर फुर्सत पाई, तो गर्मी के कारण कुछ ही देर बाद बालों को छोड़ बदन का पानी सूख गया। कपड़े धोने के साबुन के कारण जिस्म की चमड़ी खुश्क हो गई थी।
ऐसा लगने लगा जैसे चमड़ी में खिंचाव आ रहा हो।
बदन खुजलाने लगा।
जब उसने हाथ खुजलाया तो हाथ की चमड़ी पर सफेद लकीरें खिंच आईं।
उसने तत्काल रसोई घर जाकर सरसों का तेल हथेलियों पर लेकर पूरे बदन पर लगाया, तब जाकर उसे राहत मिली।
फिर उसने अम्मी की पेटी खोलकर ईद वाला सलवार-सूट निकाला।
मेंहदी रंग का वह सूट सलीमा पर खूब फबता था।
रूकैया और सुरैया उसे सजते हुए बिटुर-बिटुर ताक रही थीं।
उसने सुरैया को समझाया कि वह एक-डेढ़ घण्टे में आ जाएगी।
वह ट्यूशन पढ़ने जा रही है।
उसके पीछे वे दोनों शैतानी न करें।
लड़ाई-झगड़ा न करें।
रसोई की देगची में चावल-दाल बचा हुआ है। भूख लगे तो वही भकोस लें।

कहीं बाहर खेलने न जाएं और न ही किसी को घर में घुसने देंगी।
इतना समझा, किताब-कापी लेकर सलीमा गंगाराम सर के घर की तरफ निकल पड़ी।

S

बस-स्टैंड के पीछे नदी की तरफ जाने वाले रास्ते में सेठ किरोड़ीमल के नौकरों का आवास और गाय-भैंस वाली खटाल थी।
नदी के किनारे की ज़मीन, जो कि निश्चित है कि सरकारी ही होगी। उस ज़मीन पर सेठ किरोड़ीमल ने अवैध क़ब्ज़ा जमा कर लगभग बीस मकानों का एक बाड़ा बनाया हुआ था।
दो-दो कमरे के पंक्तिबद्‌ध मकान।
पानी के लिए कुंआ और कुंआ के इर्द-गिर्द औरतों और मर्दों के नहाने के लिए अलग-अलग गुसलखाने।
टट्‌टी के लिए उस बाड़े में कोई व्यवस्था न थी। इसीलिए किरोड़ीमल के किराएदार स्त्री-पुरूष सुबह-सुबह हाथ में लोटा या प्लास्टिक की बोतल या डब्बा लिए नाले की तरफ निकल जाते। बच्चे सड़क किनारे कचराघर के पीछे या नाली के किनारे लाईन लगा कर बैठ जाते। आस-पास सुअर और कुत्ते घूमते रहते।
ये नाली गंगाराम सर के मकान के सामने से गुजरने वाली नदी पर जाकर खतम होती थी।
गंगाराम सर का मकान नदी के छोर पर था।
नदी नगर की विभाजन-रेखा है।
नदी के इस तरफ एक धड़कता हुआ जीता-जागता नगर और नदी की दूसरी तरफ खेत-खलिहान और निर्जन से गांव।
कहते हैं कि नदियों के किनारे ही दुनिया की सभ्यताएं विकसित हुई हैं। आख़िर हों भी

क्यों न! अब इसी नदी को ही ले लो। बस-स्टैंड बना तो नदी के तट पर कि यात्रियों, बस-चालकों, कण्डक्टरों आदि को निस्तार के लिए कहीं भटकना न पड़े। नदी के किनारे दैनिक-क्रिया से फ़ारिग भी हो लिए, कपड़े साफ कर लिए और नहा लिए।
पूरा नगर ही नदी के साथ-साथ बल खाते हुए विस्तार पाया है।
नदी के इर्द-गिर्द धड़ाधड़ मकान बन रहे हैं।
जो भी इस नगर में एक बार आया यहीं का होकर रह गया।
इसी कारण मारवाड़ियांे, जैनियों, सिक्खों, इसाईयों और मुसलमानों के कई-कई पूजा-स्थल यहां बन गए।
मंदिर तो अनगिनत होंगे।
जब सारे भगवानों के लिए अपने अलग-अलग, कई-कई मंदिर बन गए तो उसके बाद नगरवासियों ने शिरडी वाले साईं बाबा का मंदिर बनाना शुरू कर दिया है।
एक और भगवान डेरा सच्चा सौदा वाले राम-रहीम बाबा। जाने कैसे उनके भी ढेर सारे भक्त इस नगर में हैं और नगर के बाहर बैरियर के उस पार चार एकड़ में एक आश्रम बन रहा है जिसके बाहर बोर्ड लगा है--''डेरा सच्चा सौदा''।
मुसलमानों में धर्म और व्यवसाय के घाल-मेल को समझने वालों ने भी नगर के बाहरी इलाके में एक मज़ार का तसव्वुर कर लिया।
पहले जहां घोड़े और खच्चर वाले आबाद थे उनकी सीमा पर अब वहां पर एक पक्की मज़ार है। आस-पास चादर-फूल-शीरनी वालों की दुकानें खुल गई हैं। दो-तीन गुमटियों में चाय-नाश्ता की दुकानें हैं।
हर साल वहां उर्स का मेला भरता है।
नागपुर, बनारस जैसी जगहों से क़व्वाल बुलाए जाते हैं। ढेरों चादरें चढ़ती हैं।
राम-लीला, यज्ञ, रास-लीला जैसे आयोजन बड़े धूम-धाम से किए जाते हैं।
सेठ किरोड़ीमल के बाड़ा और गंगाराम सर के मकान के बीच की खाली जगह पर एक भव्य शिव-मंदिर का निर्माण-कार्य चल रहा है।
नदी के इस इलाके में सलीमा बहुत कम आई थी।
जब पानी की किल्लत होती थी तब सलीमा अपनी अम्मी के साथ इस नदी पर कपड़े धोने और नहाने आया करती थी। नदी आगे जाकर मुड़ गई है। जहां पर नदी मुड़ती

है, नदी की धार मंद होती है उस जगह को ‘दहरा’ कहा जाता है।
सलीमा ने ‘दहरा’ का अर्थ ऐसी जगह से लिया जहां पानी कुछ गहरा हो। वाकई ‘दहरा’ पर पानी प्रचुर मात्रा में साल भर रहता है।
‘दहरा’ के किनारे ग्रेनाइटिक चट्टानें हैं।
उन चट्टानों पर लोग कपड़े धोते हैं।
सलीमा को इस ‘दहरे’ पर नहाना बहुत अच्छा लगता था। हां, गर्मियों में जब वे नहा-धो कर घर वापस आतीं तो धूप सिर चढ़ आती थी और पूरा बदन पसीना-पसीना होकर दुबारा नहाने की मांग करता था।

सलीमा जिस समय गंगाराम सर के मकान पहुंची, आसमान की ऊंचाईयों पर सूरज दमक रहा था।
मकान के दरवाज़े पर नेमप्लेट लगी थी।
लिखा था-“गंगाराम, व्याख्याता”
सलीमा थोड़ी देर रूकी रही, क्योंकि घर का दरवाज़ा अधखुला था।
उसने अंदर झांका।
पहला कमरा बैठकी की तरह का था, जिसमें चार प्लास्टिक की कुर्सियां और एक तख्त था।
तख्त पर सलीके से गद्दा-तकिया बिछा था।
थोड़ा और अंदर तक ध्यान से देखने पर उसने पाया कि अंदर वाले कमरे में गंगाराम सर कच्छा-बनियान पहने बैठे हैं। केरासिन तेल वाले प्रेशर-स्टोव के जलने की आवाज़ आ रही है।
सलमा ने झिझकते हुए सांकल बजाई।
गंगाराम सर ‘हांजी’ की आवाज़ निकालते बाहर आ गए।
उनके हाथ पर आटा चिपका था।
शायद आटा गूंथने की तैयारी कर रहे हो या फिर रोटी बना रहे हो।
सलीमा को सर की ये हालत देख हंसी आई लेकिन संकोच के कारण वह हंसी नहीं।

गंगाराम सर ने उसे अंदर आने को कहा।
“हें हें हें, का करूं, बच्चे हैं नहीं, सो खुदै रोटी पका रहा था।” गंगाराम सर ने बातें बनाईं।
सलीमा से रहा न गया।
उसने कहा कि सलीमा के रहते सर रोटी बनाएं वह कैसे बर्दाश्त करेगी। इसलिए आप दूसरे काम निपटा लें तब तक सलीमा रोटी बना देगी।
गंगाराम सर ने कहा कि ये तो रोज़ाना का काम है। होटल का खाना बदन को ‘सूट’ नहीं करता इसलिए जैसा भी कच्चा-पक्का बनता है, बना लेते हैं।
अंदर के कमरे में एक तरफ किचन थी।
वाकई गंगाराम सर आटा गूंथने की तैयारी में थे। तभी तो स्टील की परात में आटा पड़ा था और जग में पानी।
सलीमा बैठ गई और आटा गूंथने लगी।
गंगाराम सर उसके पास बैठ गए और सलीमा को आटा गूंथते देखते रहे।
सलीमा ने आटा गूंथने के बाद आटे की छोटी-छोटी लोईयां बनाईं।
गंगाराम सर उन लोईयों को बेलने लगे तो सलीमा ने उनसे बेलन-चैकी छीन ली और कहा कि आप बैठ कर रोटी सेंक दें।
सलीमा रोटी बेलने लगी।
गंगाराम सर तवे पर रोटी सेंकने लगे।
सलीमा को संकोच तो हो रहा था, लेकिन कक्षा में बुरी तरह पीटने वाले गंगाराम सर की इस दयनीय हालत से वह द्रवित हो गई थी।
घर में कितने सीधे-सादे हैं गंगाराम सर, सलीमा को यह अच्छा लग रहा था।
दस-बारह रोटियां बनाईं उसने।
फिर वह अंदर आंगन में आकर हाथ धोने लगी।
उसने सोचा कि वक्त तो ऐसे ही गुज़र गया।
पता नहीं कब सर पढ़ाएंगे और फिर उसे वापस घर भी तो लौटना है।
सलीमा हाथ धोकर बैठकी में आ गई और ज़मीन पर चटाई बिछाकर किताब खोल कर पढ़ने लगी।

गंगाराम सर भी वहां चले आए।
उनके हाथ में दो थालियां थीं।
एक खुद के लिए और दूजी थाली सलीमा के लिए।
सलीमा ने बताया कि वह तो खाना खाकर आ रही है।
गंगाराम सर ने कहा-"का हुआ, जो खा कर आई हो। अरे, इहां का भी तो चख कर देखो---!"
सलीमा को भूख तो लग आई थी, लेकिन संकोच के कारण वह निर्णय नहीं ले पा रही थी, कि खाना खाए या न खाए।
देखा कि उसकी थाली में दो रोटियां हैं।
उसने एक रोटी उठाकर गंगाराम सर की थाली में डाल दी और सकुचाते हुए रोटी के छोटे-छोटे कौर बनाने लगी।
सर भी उसके पास चटाई पर बैठ कर रोटी खाने लगे।
एक रोटी के तीन कौर बनाकर चपर-चपर की आवाज़ के साथ गंगाराम सर खाना खाने लगे। सलीमा को चप-चप की आवाज़ से चिढ़ है।
बहनों को तो वह टोक देती थी, लेकिन सर को कैसे मना करे।
उसने किसी तरह रोटियां कंठ के नीचे उतारी और चुप-चाप बैठी रही।
गंगाराम सर ने लगभग आठ रोटियां खाई होंगी फिर एक लोटा पानी पीकर उन्होंने बड़ी तेज़ डकार ली।
सर ने थाली में ही हाथ धोया और सलीमा से भी कहा कि वह थाली में हाथ धो ले। सलीमा की अम्मी ने यही सब तो सिखाया था कि हाथ उस थाली में कभी न धोइए, जिसमें आपने खाना खाया हो।
सलीमा उठते हुए सर की जूठी थाली उठाने लगी तो सर ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा-"अरे, ये का कर रही हो। बाई आएगी तो बर्तन धोएगी।"
सलीमा ने थाली उठाकर हाथ में ले ली और आंगन में आ गई।
एक तरफ बर्तन-कपड़े धोने के लिए जगह बनी थी।
उसने जूठी थालियां वहीं रख दीं और थोड़े से पानी से हाथ धो लिए।
खाना खाकर गंगाराम सर की तोंद उभर आई थी।

वे चटाई पर बैठ कर एक डब्बे से तम्बाखू-चूना-सुपारी का गुटखा बनाने लगे।
सलीमा भी उनके पास बैठ गई और किताब खोलने लगी।
खैनी खाकर गंगाराम सर थूकने के लिए बाहर निकले और फिर वापस आकर तखत पर पसर गए।
फिर उन्होंने सलीमा को तखत के पास वाली कुर्सी पर बैठने का इशारा किया।
सलीमा चटाई पर ही बैठी रही तो सर फुर्ती से उठे और सलीमा को उठा अपने पास तखत पर बिठा लिया।
सलीमा अचकचा गई।
जो टीचर स्कूल में इतना सख्त हो कि पीट-पीट कर हाथ लाल कर दे, वह घर में इतना मुहब्बती होगा, सलीमा को यकीन न हुआ।

ऽ

मछली आसानी से नहीं फंसती, बल्कि पानी में बंसी डाल, बड़े धैर्य से नदी-तट पर बैठा जाता है।
ज़रूरी नहीं कि हर बार चारे की लालच में मछली फंस ही जाए।
मछली का शिकार करने वाले बड़े आशावादी होते हैं।
हार नहीं मानते।
ये जानते हैं कि किस्मत ठीक होगी तो मछली जाएगी कहां, फंसेगी ज़रूर!
नहीं फंसी तो बुरा क्या मानना, टाईम तो पास हुआ।
सलीमा ने उस दिन जान लिया कि गंगाराम सर उसे एक मछली समझ रहे हैं।
सुहानुभूति और सहयोग के रूप में उसके सामने लुभावना चारा डाल रहे हैं। उस चारे के अंदर कांटा है ये सलीमा जानती है।
लेकिन क्या करे सलीमा, वह एक नन्ही मछली जो ठहरी।
जल में रहकर अठखेलियां करना तो सभी मछलियां सीख जाती हैं, लेकिन जाल में फंसे हुए, पानी से बाहर आकर तड़पने की कला मछलियां तभी सीखती हैं, जब उनका अंतिम समय आता है।

ये सलीमा जैसी मछलियों की बिडम्बना होती है जो वे पानी को छोड़, गर्म-तपती रेत पर जीने का हुनर सीखना चाहती हैं।
गंगाराम सर ने उसे उस दिन जो पहला सबक सिखाया वह गणित विषय का तो क़तई न था।
वह जैसा भी अनुभव था, बाहरी दुनिया से सलीमा का प्रथम-साक्षात्कार था।
सलीमा ने उस अनुभव से दुनिया को समझने का प्रयास किया था।
पता नहीं उसके दिल में हूक सी उठी और खूब रोने की इच्छा हुई।
वह रोने लगी।
गंगाराम सर एक अबोध बालक बन कर उसके आंसू पोंछने लगे।
वह उसे चुप कराने का भगीरथ प्रयास कर रहे थे।
तब सलीमा ने जाना कि आदमी की ज़ात उतनी डरावनी नहीं होती, जितना उसे समझा जाता है।
इतनी ताकत, इतने अहंकार, इतनी क्षमता रखने वाला आदमी कितना बेवकूफ़ और डरपोक होता है!
अपनी देह की दौलत और रूप के जादू से अनजान औरतें ही मर्दज़ात से डरती हैं। वरना मर्द तो ऐसे पालतू बन जाएं कि उनके गले में पट्टा डाल कर उन्हें औरतें आराम से टहलाती फिरें। उनके एक इशारे पर हुक्म बजाने को तैयार खड़े रहें।
सलीमा रोए जा रही थी और गंगाराम सर रूप बदल-बदलकर उसे चुप कराने का प्रयास कर रहे थे। वह उसे प्रलोभन भी दे रहे थे।
सलीमा फिर भी चुप न हुई तो वह उठे और आलमारी खोलकर उसमें से कुछ रूपए निकाले।
फिर उन्होंने पचास रूपए के दो नोट सलीमा के हाथ में रखे कि वह रोए नहीं।
सलीमा ने रूपए नीचे फेंक दिए।
गंगाराम सर रूपए उठाकर उसके हाथ में पुनः पकड़ाते हुए बोले-''इसे रख लो। अपना समझकर दे रहा हूं। इंकार न करो। अब तुम से मेरा रिश्ता भी तो बदल गया है। तुम्हें कोई भी दुख हो, तकलीफ़ हो। कैसी भी ज़रूरत हो, मुझे याद कर लेना।''
सलीमा जानती थी कि उसके जीवन में रूपए की क्या क़ीमत है?

सलीमा उस दिन ये भी जान गई कि आठ-दस घण्टे की हाड़-तोड़ मेहनत के बाद भी अब्बू को हाजीजी इतनी पगार नहीं देते जितनी सलीमा ने गंगाराम सर के हाथों कमाए थे। अब्बू को चालीस रूपए रोज़ की दर से वेतन मिलती है। जिस दिन काम पर न जाएं उस दिन नागा मान लिया जाता है। यदि कोई ग़लती हो जाए तो वेतन से कटौती की जाती है।

और इस मामूली सी 'एक्सरसाईज़' के लिए गंगाराम सर ने उसे क्या भुगतान किया-''एक सौ रूपए!''

बाप रे बाप!

सलमा ने ज़िन्दगी के अभाव को दूर करने का 'शार्टकट' जान लिया था---

जिसने की शरम---

सलीमा ने पाया कि गंगाराम सर के व्यवहार में कठोरता की जगह कोमलता ने ले ली है।

गंगाराम सर उसकी तरफ़ अतिरिक्त ध्यान देने लगे हैं।

उसकी पसंद-नापसंद को तवज्जो देने लगे हैं।

देखते रहते हैं कि सलीमा परेशान तो नहीं।

कक्षा में पढ़ाते समय, आंखों ही आंखों उसका हाल-चाल लेते।

मुठभेड़ हो जाने पर उसे रोक कर ‘सुखम-दुखम’ ज़रूर कर लिया करते।

सलीमा के अंदर पैठी झिझक अब धीरे-धीरे ख़त्म होती जा रही थी।

झिझक जो एक साधन-विहीन, निर्धन, दुर्बल और मजबूर व्यक्ति के अस्तित्व पर जबरन लादा गया एक आभूूषण होती है।

झिझक जो व्यक्ति को कभी किसी से नज़रें मिलाने या उठाने से रोकती है।

झिझक जो आदमी को ऊंची आवाज़ में बोलने नही देती।

झिझक जो बड़े लोगों के बराबर बैठना जुर्म मानती है।

झिझक जो अच्छे कपड़े पहनकर घर से निकलने नहीं देती----झिझक से ग्रसित व्यक्ति फटे-पुराने कपड़ों में खुद को स्वाभाविक पाता है।

झिझक जो बेशर्म होकर किसी से कुछ भी मांगने नहीं देती, जबकि मांगना एक कला है---सरकारें तक वल्र्ड-बैंक से मांगती हैं, अमरीका से मांगती हैं---प्रवासियों से अपेक्षा रखती हैं कि वे अपने देश में ‘इन्वेस्ट’ करें---ये भी एक तरह का मांगना ही है।

इस झिझक रूपी आभूषण को पहनकर अधिकांश लोग ताउम्र कुनमुनाते-सकुचाते रहते हैं।

सरकारें जानती हैं कि इसे धारण करने वालों की जमात को आसानी से वोट में बदला जा सकता है।

इन्हें ‘मैनेज’ करना आसान होता है।

ये लोग प्रायः स्वप्नजीवी होते हैं और आसानी से वाग्जाल में फंस जाते हैं।

यह ऐसे लोगों का समूह है जिसे 'वोट-बैंक' के नाम से जाना जाता है।
सरकारें जानती हैं कि ये जो आबादियां हैं---ये जो झिझकती रहती हैं---- ये अपनी कमज़ोरियों से कभी उबरती नहीं हैं---
ये लोग सदियों आस लगाए बैठे रह सकते हैं कि कोई न कोई ज़रूर आएगा और पू्र्व जन्मों के इस झिझक रूपी अभिशाप से उन्हें मुक्त कराएगा।
इसी झिझक को कुछ लोग कछुए के खोल की तरह ओढ़ लेते हैं।
इस खोल से फिर वे बाहर निकलना नहीं चाहते।
इन्हीं लोगों को गांधीवादी 'पंक्ति का आखिरी आदमी' कहते थे----
इन्हीं लोगों के लिए दीनदयाल उपाध्याय ने 'अंत्योदय' का नारा दिया था---
यही वो समुदाय है जो कुपोषण, अशिक्षा, बीमारी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं से ग्रसित रहता है।
यही वो लोग हैं जिनके उत्थान के लिए सरकारें योजनाएं बनाती हैं---
ये लोग न रहें तो सरकारें करोड़ों रूपयों की हेरा-फेरी न कर पाएं----
झिझकने की बीमारी से उबरने वाले चंद लोगों का अद्‌भुत कायांतरण होता है।
सरकारी योजनाओं और मजबूरों की फौज के बीच जो दलाल वर्ग पैदा होता है, उसकी सबसे निचली कड़ी होते हैं ये लोग।
तभी तो बड़े अफसरों, नेताओं, उद्‌योगपतियों के अलावा बाबुओं, चपरासियों के यहां भी अकूत दौलत मिल जाती है, क्योंकि ये छोटे लोग धन कमाने के लिए झिझकते नहीं।
ये वो होते हैं, जो जान जाते हैं-- "जिसने की शरम, उसके फाटे करम!"
ये न झिझकने वाले लोग ही बेशरम लोग हैं जिनके योगदान से सरकारी स्कूल बंद होने के कगार में हैं और आए दिन कुकुरमुत्तों की तरह एक से बढ़कर एक निजी स्कूल-कॉलेज खुलते जा रहे हैं।
इन नव-दौलतियों के कारण सिनेमाहॉल की जगह मल्टीप्लेक्सों ने ले ली है।
इन नव-कुबेरों के कारण डिपार्टमेंटल-स्टोर की जगह एक से बढ़कर एक शॉपिंग-मॉल खुलते जा रहे हैं।
इन नव-धनपशुओं के उद्‌भव से डिस्पेंसरियों की जगह मंहगे नर्सिंग-होम और पंच-सितारा हॉस्पीटलों की श्रृंखला देश में विकसित हो रही है।

इन बेशरम भ्रष्टाचारियों के हाथों में मोबाईल, ब्रीफकेस में लेपटाॅप, जेब में डाॅलर, वैलेट में किसी बाबा की फोटो के साथ तीन-चार क्रेडिट-कार्ड होते हैं।

ये ब्राण्डेड कपड़े पहनते हैं।

घड़ियां, टाई, परफ्यूम, जूते, मोजे----सब ब्राण्डेड पहनते हैं।

यहां तक कि इनकी चड्डियां भी ब्राण्डेड होती हैं।

एक तबका ऐसा है कि जिसके घर में दिनभर खुदाई की जाए तब भी एक सौ रूपए का नोट बरामद न हो पाए और दूसरा तबका ऐसा है जिसे करोड़ों खर्च करने के बाद भी हिसाब रखने की ज़रूरत नहीं पड़ती----

सलीमा क्या करती?

ज़माने के चलन ने उसे मजबूर किया और उसने झिझक का दामन छोड़कर बेहयाई की उंगली थाम ली----

इश्क-कमीना

सलीमा जानने लगी थी कि इस आपाधापी के दौर में इश्के-मजाज़ी, इश्के-हक़ीक़ी जैसी चीजे नहीं चलतीं।

इश्क़ की जगह लोगों ने एक नया शब्द ईजाद किया है ‘दोस्ती’।

ये दोस्ती कई तरीके से चलती है और एक दिन ऐसा भी आता है कि ‘लिव-इन रिलेशनशिप’ ें तब्दील हो जाती है।

अब वो ज़माना नहीं रहा कि आशिक गाता फिरे-तुझे चांद के बहाने देखंू----.तू छत पर आ जा गोरिए---’

अब तो सीधे कहना है कि-‘‘टन टनाटन टन टन टारा----चलती है क्या नौ से बारह..’’ ये इश्क-विश्क के चक्कर तो बीते ज़माने की बातें हैं।

तब होता ये था कि बंदा ज़िन्दगी के कई माह सिर्फ अपने माशूक की झलक पाने में खर्च कर देता था।

फिर शुरू होता था सिलसिला-‘बलम देखा-देखी हो जाए..’ का।

आशिक यही समझता रहता है कि माशूका ने जो नए कपड़े पहने हैं वो सब आशिक को रिझाने के लिए पहने हैं।

आशिक को यही गलतफ़हमी होती रहती है कि चांदनी की शीतलता का कारण माशूूक का छत पर टहलना है।

आंधी-तूफान का कारण माशूूक के दिल में प्यार की तड़प पैदा होना है।

पतझड़ की आमद यानी आशिक से जुदाई की रूत आई है।

बागों में फूल खिले हैं यानी माशूक के दिल में उमंगें जगी हैं----

आसमान में सितारे झिलमिलाने लगे यानी माशूक के दुपट्टे पर प्यार के गीत लिखे जा रहे हैं।

ऐसे समय में आशिक बेइंतेहा सपने देखने लगता है।

कभी बारिश में भीगती आती माशूूूका को अपनी छतरी में जगह देते वक्त उसकी नींद खुल जाती है।

कभी माशूका से कॉलेज की सीढ़ी चढ़ते में मुलाकात के दौरान अचानक उसके भाई की आमद से हड़बड़ाकर नींद खुल जाती है।

उस ज़माने में एक तरफा इश्क ही अधिकतर होता था।

आशिक को अचानक एक दिन पता चलता था कि माशूका के घर में रंगाई पुताई चल रही है। माशूूका की बरात आने वाली है।

माशूूका डोली चढ़कर विदा होने वाली है।

आशिक निराश है---उदास है---हताश है और मज़े की बात है कि डोली में बैठी माशूका को मालूम ही नहीं है कि कोई बंदा उससे गुपचुप इश्क भी करता है।

और एक दिन ऐसा भी आता है जब आशिक आवारागर्दी करते हुए एक दिन एक बच्चे की मां अपनी माशूूका से टकराता है तो माशूका मुस्कुराकर अपने बच्चे से कहती है--"बिट्टू, नमस्ते करो, ये तुम्हारे मामा हैं---!"

इस तरह से गांव-कस्बों के इश्क की कहानी चकनाचूर हो जाती थी।

अब इश्क न इश्के-हक़ीक़ी रह गया है न इश्के-मजाज़ी---अब इश्क कमीना होने लगा है।

एडवान्स्ड लोग अब इश्क को बद्तमीज-इश्क भी कहने लगे हैं।

अब लैला-मजनू, रोमियो-जूलियट, शीरीं-फ़रहाद, सस्सी-पुन्नू जैसे इश्क नहीं दिखलाई दिया करते।

इश्क ऐसा भी क्या कि हीरो-हिरोईन का मिलन न हो---सिर्फ दुःख ही दुःख का नाम तो इश्क नहीं होना चाहिए---आखिर 'एन्ज्वॉय' भी तो कोई चीज़ होती है।

ये क्या कि 'खाया पिया कुछ नहीं---गिलास तोड़ने के दो रूपए---"

अब बंदे कुछ भी इन्वेस्ट करने से पहले रिटर्न की तहक़ीकात कर लिया करते हैं। यदि रिटर्न अच्छा नहीं तो फिर कुत्ता काटा है जो बन्दा इन्वेस्ट करे---

शुद्ध देसी शब्द आज का आशिक अपनी भावनओं को इस तरह बयान करेगा--"हम चूतिया है का..अंय----का एही खातिर प्रेम किए थे कि कउनो और एन्जाॅए करे----टपकईये न देंगे ससुरे को!'

अब लोगों ने जान लिया है कि नायक से ज्यादा सुखमय जीवन खलनायकों का होता है।

लोगों ने जान लिया है कि त्याग से ज्यादा आनंद भोग में है।
लोगों ने जान लिया है कि लोक संवारना प्रमुख है, परलोक की चिन्ता में लोक की सुविधाओं से वंचित रहना मूर्खता है।
स्वर्ग-नरक का खेल जब होगा तब उस हिसाब से गेम खेल लिया जाएगा! अभी हाथ आई लक्ष्मी को ठुकराना तो मूर्खता है।
जिस तरह से संसार चल रहा है, उससे तो लगता है कि भगवान को दुनिया की निन्नानबे प्रतिशत आबादी को नरक भेजना होगा।
और जब इतने सारे लोग नरक में रहेंगे तो फिर सभी लोग दण्ड पाया करेंगे।
वहां कम से कम रैंक या ओहदे का झमेला तो नहीं होगा। सभी बराबर गिने जाएंगे।
ऊंचे लोगों को भी तो निचले तबके के लोगों के साथ नरक में जून भुगतना होगा।
भगवान के घर कम से कम इस तरह का भेदभाव नहीं होगा।
नहीं तो अफसर सिर्फ हस्ताक्षर रूपी चिड़िया बिठाने का पाते हैं फिफ्टी परसेंट और आंख में चश्मा चढ़ाए..घण्टों मगजमारी करके फाईल तैयार करने वाले बाबुओं को कितना मिलता है---यही आधा या एक परसेंट ही न----
सलीमा के ज़ेहन में जन्नत और जहन्नुम की अलग-अलग छवियां हैं।
अब्बू से उसने जाना कि अच्छे कर्म करने वाले, नमाज़ पढ़ने वाले, रोज़ा रखने वाले, ज़कात अदा करने वाले सच्चे लोग जन्नत में जाएंगे---ये लोग यदि पुरूष हैं तो इनकी खिदमत के लिए एक से बढ़कर एक हूरें मिलेंगी----.
ये हूरें कौन हैं---
कहीं धरती में अच्छे कर्म करने वाली स्त्रियां ही तो हूर नहीं बन जाएंगी?
यदि यही हूर बनेंगी तो फिर उन्‍हें इन दाढ़ी-टोपी वाले मरदों की खिदमत करनी होंगी?
इसका मतलब ये जन्नत तो मरदों के लिए बनी है---
तो नेक स्त्रियों को जन्नत में क्या मिलेगा----?
इसका जवाब सलीमा को नहीं मिल पाता था---
अब्बू सलीमा की जिज्ञासा को हंसकर टाल देते कि वहां दूध की नदियां बहती हैं----
सलीमा सोचा करती कि चलो जन्नत में अब्बूू को बिना दूध की चाय पीनी नहीं पडेगी---

लेकिन अब्बू तो पांच वक्त की नमाज़ भी नहीं पढ़ते---फिर उन्हें अल्ला-तआला जन्नत का ईनाम देंगे?
फिर सलीमा के तर्क आपस में गुंथ कर उलझ जाते---सलीमा उन्हें सुलझा नहीं पाती---उसके बूूते की बात भी नहीं है ये----

दिन ब दिन बढ़ती गईं----

गंगाराम सर जैसे अध्यापकों की संगत में रहकर सलीमा एक चतुर-चालाक लड़की में बदलती जा रही थी।
गंगाराम सर उसे देख कर मेंहदी हसन की गाई ग़ज़ल गुनगुनाते--

"दिन ब दिन बढ़ती गईं, उस हुस्न की रानाईयां
पहले गुल, फिर गुलबदन, फिर गुल-बदामां हो गए."

सलीमा ने फ़ारसी के रानाईयां का मतलब समझा हो या न समझा हो लेकिन उसे लगने लगा था कि उसकी देह में लुनाई आने लगी है।
सलीमा सोचा करती कि झिझक या शरम से उबरने वाले व्यक्ति को सिर्फ और सिर्फ 'ढीठ' कहना पर्याप्त होना चाहिए।
सलीमा भी अब ढीठ बन चुकी थी।
उसके अंदर सहज रूप से चालाकियां, चालबाज़ियां और चतुराई ने डेरा बना लिया। वो जितनी सरलता से झूठ बोल लेती थी उतनी सफाई से सच नहीं बोल पाती थी। इसीलिए अब उसे बेवकूफ बनाना आसान नहीं था।
सलीमा जानती थी कि उसने जीवन की पाठशाला से ये जो नया सबक सीखा है ये कोई अच्छा सबक नहीं है, लेकिन उस जैसी पंखहीन लड़की के लिए उधार के पंख ही सही! लेकिन हर काल में, हर देश में, औरत के लिए सहज-प्राप्य पाठ यही तो होता है----
चाहे कितनी आचार-संहिताएं बना दी जाए---
चाहे कितने नए और कड़े कानून पास हो जाएं---
चाहे कितने सुधारवादी आंदोलन चलाए जाएं----.
स्त्री-जीवन से जुड़े देह के प्रश्न का उत्तर कभी नहीं मिल पाएगा----
इसी देह की भाषा के अनुवाद का पाठ हर युग में अलग-अलग रूपों में किया जाता रहा है।
इसी बात की गवाह हैं वैशाली की नगरवधुएं---देवालयों की देवदासियां---अवध-बनारस की तवायफ़ें---

इसी बात की तस्दीक करती हैं फैशन-शोज़ की मा ॅ ॅडल्स, पोर्न बाज़ार की नायिकाएं----सिने जगत की हीरोइनें----

सभी जानते हैं कि बहुत कठिन है डगर पनघट की----.

यदि स्त्री स्वेच्छा से शुचिता का सौदा करने को तैयार न हो तो उसे मनाने के हज़ारों हथकण्डे समाज अपनाता है।

इसीलिए सलीमा ने रणनीति के तहत देह को एक हथियार की तरह इस्तेमाल करने का कार्यक्रम ही बना लिया।

और वाकई दुनिया उसके क़दमों तले आने लगी।

उसने जो दुनियादारी की नई डिग्री हासिल की, उसे दुनिया के किसी मुल्क की यूनिवर्सिटी में पढ़ाया नहीं जाता है।

ये ऐसी पढ़ाई है, जिसके सिलेबस का निर्धारण कुदरत स्वयं करती है।

जिसे पढ़ाने, समझने या फिर व्याख्या करने के लिए किसी प्रोफेसर, किसी पुस्तकालय की ज़रूरत नहीं होती।

दुनिया के कोने-कोने में किशोरियां चाहे घर के अंदर या घर से बाहर, इस विद्या में पारंगत होने लगती हैं।

इसीलिए उन्हें सावधान रहना पड़ता है---बाहर वालों के अलावा खास अपनों से भी----

ऐसा है ये समाज जो कि स्त्री को युवा होने का अवसर ही नहीं देता और कुछ ऐसे ज़ालिम होते हैं जो गोद में खेलती बच्चियों को भी नहीं बख़्शते----

इन मरदों का तर्क होता है कि चाकू ू तरबूजे पर गिरे या तरबूज़ा चाकू पर---नुकसान तरबू ूजे का ही होना है---यहां उनका मंतव्य है कि चाकू माने शक्तिशाली पुरूष और तरबू ूज़ा माने भोग्या स्त्री---

इन स्त्रियों के चलते सारी दुनिया में एक बड़ा उपभोक्ता बाज़ार बन गया है----

यदि ऐसा न हो तो फैशन-टीवी के शो बंद हो जाते----ये कमसिन किशोरियां आखिर कौन हैं? क्या ये किशोरियां फैशन टीवी वालों के स्टूडियो में सीधे आसमान से अवतरित होती हैं?

क्या ये किशोरियां किसी की औलाद नहीं होतीं?

क्या इनके भाई नहीं होते, जिनके गुस्से और कच्चा चबा जाने का डर उन्हें नहीं रहता?

क्या इनके इस तरह रहने से किसी खाप, समाज या जिरगे की इज़्ज़्ात पर धब्बा नहीं लगता?

फैशन शो के रैम्प पर कम से कम कपड़ों में दिन-रात कैट-वाक करने वाली ये किशोरियां कौन हैं?

सलीमा जानने लगी थी कि जो दिखता है वही बिकता है----और समय रहते समय का लाभ सभी उठाते हैं।

एक बार पैसे आ भर जाएं इंसान के पास, फिर कोई इंक्वारी नहीं करता कि पैसे कहां से आए---!

इसी पैसे के ज़ोर से समाज में आदमी की इज़्ज़त है, रसूख है।

वो चाहे मौलवी हों, या बाबा पण्डित हों या पादरी, सभी पैसे वालों को मुक्त कण्ठ से दुआएं देते हैं।

पैसे वालों की सलामती के लिए अनुष्ठान करते हैं।

उनकी ग्रह-दशा ठीक करने के लिए बेचैन रहते हैं।

'द होल थिंग इज़ दैट के भईया---सबसे बड़ा रूपइया---''

ये पैसा न होता तो फिर इतनी मारा-मारी न होती।

इंसान की ज़िन्दगी में पैसे के महत्व को सलीमा ने जान लिया था।

सलीमा के घर के हालात ऐसे न थे कि वह ज्यादा दिन तक दूसरो के रहम पर पलती-पढ़ती रहे।

आगे पढ़ाई कठिन भी थी और खर्चीली भी।

जबकि उसकी छोटी बहनें सुरैया और रूकैया भी अब बड़ी कक्षाओं में आ गई थीं।

सलीमा सोचती थी कि ये ही पढ़-लिख लें तो अच्छा है।

जबकि गंगाराम सर हमेशा उसे समझाया करते कि यदि सलीमा चाहे तो वह उसे आसानी से बीए-एम्मे करा देंगे।

लेकिन हर काम का एक दाम होता है।

सलीमा चाहती थी कि अब वह अपने काम का दाम पढ़ाई में न लगाकर स्वावलंबी बनने में लगाए।

ये जिस्म हमेशा जवान तो रहेगा नहीं---

जब ये जिस्म ढलने लगेगा तब फिर क्या होगा?
जिस्म के खेल से पैसे बनाने का काम ज्यादा दिन चलेगा नहीं---
कुछ और व्यवस्था सोचनी होगी---
अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा---
आर्थिक आज़ादी रहेगी तो सब कुछ ठीक हो जाएगा।
सलीमा जिस राह पर चल पड़ी है उसमें ज़ाहिर है कि उसकी खुद की शादी होना मुमकिन नहीं---
लेकिन सलीमा चाहती है कि अपनी बहनों की डोली अपने दम इस घर से रवाना करेगी।
दोनों बहनें सुरैया और रूकैया हैं भी एकदम सुन्दर----दोनों बहनें अम्मी पर गई हैं---पता नहीं क्यों सलीमा अब्बूू पर गई और सुन्दर नहीं हो पाई---
हो सकता है कि अल्लाह की इसमें भी कुछ मसलेहत हो----
सकीना आपा ने सुरैया को अपने लड़के यूसुफ के लिए पसंद कर रखा है।
सकीना आपा बेवा हैं।
सिलाई-कढ़ाई करके बाल-बच्चे पालती हैं।
उनका लड़का यूसुफ नदी उस पार शर्मा-आॅटो गैरेज में काम करता है।
यूसुफ सुन्दर है।
अभी चैदह साल का है यूसुफ।
नमाज़ी तो नहीं है लेकिन जुमा की नमाज़ बाजमात अदा करता है।
बस उसमें एक ऐब है कि गैरेज के संगी-साथियों की संगत में गंजेड़ी बन गया है।
सकीना आपा सोचती रहती हैं कि शादी के बाद शायद यूसुफ सुधर जाए।
सलीमा की अम्मी को खाला बोलती थीं सकीना आपा।
पतली-दुबली तीखे नैन-नक्श की सकीना आपा का शौहर याकूब भाईजान जीप-मिस्त्री थे।
नगर के सबसे बड़ी गैरेज शर्मा आॅटो में काम करते थे।
याकूब भाईजान बेहद मशहूर आॅटो-इलेक्ट्रिशियन थे।
शर्मा आॅटो का मालिक भाईजान को बहुत मानता था।

यही कारण था कि याकूब भाईजान शराबनोशी करने लगे थे।
एक रात वह अपने मालिक के साथ बैठे शराब पी रहे थे कि विधायक जी के गुरगे का फोन आया। विधायक जी की कार में शार्ट-सर्किट हुआ और हसदेव नर्सरी के जंगल में बंद हो गई है।
विधायक जी दूसरी गाड़ी मंगवाकर चले गए हैं, आदेश हुआ है कि शर्माजी उसे ठीक करवाएं।
कार का ड्राइवर कार के साथ जंगल ही में है।
शर्माजी ने याकूूब भाईजान से पूछा था--''जा सकते हैं भाईजान---चार पैग तो ले चुके हो..!''
याकूब भाईजान में मर्दानगी की कमी तो थी नहीं।
उन्होंने फटाक से कहा-''आप का सोचते हैं कि दारू हमको चढ़ेगी---दारू की मां की----., आप मोटर-साईकल दीजिए, अभी जाकर विधायक की कार ले आता हूं।''
शर्माजी ने कहा कि एक चेला रख लो।
याकूब भाईजान बोले--''छोड़िए चेला-वेला, बारह किलोमीटर दूर तो है नर्सरी। वहां विधायकजी का ड्राइवर मिल ही जाएगा। दोनों मिलकर कार स्टार्ट करके आ जाएंगे। पक्का काम गैरेज आके कर दूंगा---।''
याकूब भाईजान ने ज़रूरी टूल्स मोटर-साईकिल की डिक्की में रखे और किक मारकर निकल गए।
उस समय रात के दस बजे थे।
विधायकजी की कार का एक केबिल जल कर खाक हो गया था।
याकूब ने उसे बायपास किया और आधे घण्टे की कारीगरी करके कार स्टार्ट कर ली। आगे-पीछे की लाईटें भी जल गईं।
उन्होंने ड्राइवर से कहा-''चल यार, तू आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे----सीधे गैरेज चले चलते हैं। वहां कार खड़ी कर देना, और मैं तुझे घर छोड़कर अपने घर चले जाऊंगा।''
कुछ दूर आगे-पीछे दोनों गाड़ियां चलती रहीं---
कार के चालक ने एक सियार की आंखें चमकती देखीं, जो सड़क किनारे खड़ा था---कार आगे निकल गई लेकिन नशे की झोंक में याकूब भाईजान ने सड़क पार करते

सियार को नहीं देखा और उनकी मोटर-साइकिल सियार से टकरा गई।
मोटर-साइकिल लहरा कर सड़क किनारे आई और सागौन के पेड़ से टकरा कर पलट गई।
याकूब भाईजान सर के बल सड़क पर फेंका गए।
उनका सिर फट गया----वो बेहोश हो गए।
जब कार चालक ने देखा कि मोटर-साईकिल की हेड-लाईट नहीं दिख रही है तो उसने कार की रफ्तार कम कर दी। हसदेव नर्सरी में जिग-जैग मोड़ हैं। सिंगल लेन है। उसे लगा कि हो सकता है भाईजान पेशाब करने के लिए रूके हों।
जब कोई आहट नहीं मिली तो कार को वापस मोड़ दिया उसने।
कुछ दूर लौटने पर जो नज़ारा उसने देखा तो उसके होश उड़ गए।
एक मिनी ट्रक आकर रूका था।
जब्बार आलूवाले की मिनी ट्रक थी वो।
ट्रक की हेडलाईट और कार की रौशनी खून से लथपथ बेहोश याकूूूब भाईजान पर पड़ रही थी।
जंगल का अंधेरा ख़ौफ़नाक हो गया था।
कार-चालक ने जब्बार आलूवाले को पूरी बात बताई।
उन लोगों ने मिल कर याकूब भाईजान को मिनी ट्रक पर लादा और बा-रफ्तार हास्पीटल आ पहुंचे।
वहां शर्मा-आॅटो के शर्माजी भी मिल गए।
डाॅक्टरों ने एक्सीडेंट के नाम पर हाथ लगाने से पहले पुलिस को सूचना दी।
याकूब भाईजान के सिर से काफी खून बह चुका था।
जिस्म में और कहीं चोट के निशान नहीं थे।
सकीना आपा को खबर मिली तो वो अड़ोसियों-पड़ोसियों को लिए आ पहुंची।
पुलिस आई और डाॅक्टरों ने याकूब को भर्ती कर लिया।
सुबह फजिर की अज़ान के साथ याकूब भाईजान इस दुनिया से कूच कर गए।
सकीना आपा बेवा हो गईं।
शर्माजी ने याकूब भाईजान के बेटे यूूसुफ को अपने गैरेज में काम पर रख लिया।

यूसुफ कभी-कभार सलीमा के घर भी आता-जाता है।
वह सलीमा को आपा कहता है।
सुरैया और रूकैया के लिए चाॅकलेट-समोसे लाता रहता है।

एक नई राह----

अंततोगत्वा गंगाराम सर के जुगाड़ से सलीमा ने दसवीं पास कर लिया।
अब इसके आगे पढ़ने का विचार उसे त्यागना पड़ा।
अब्बू का जीवन के प्रति मोह कम होता जा रहा था।
बस, अलस्सुबह यदि एक-दोे लोग हड्डियां या नस बिठाने आए तो ठीक वरना उनके पास और कोई काम नहीं था।
अब्बू उस सूखी हुई टहनी की तरह हो गए, जो कभी भी चरमरा कर टूट सकती थी।
जब कभी कुछ ठीक लगता अब्बू किसी तरह हाजीजी की चक्की पहुंच जाते और वहां थोड़ा-बहुत काम कर देते।
अब्बू को दस-पांच रूपए मिल जाते लेकिन साथ-साथ हाजीजी की झिड़कियां भी मिल जाया करतीं--''जब जी नहीं चलता तब क्यों हराम की पगार लेने आ जाते हो मम्दू पहलवान!''
अब्बू टुकुर-टुकुर अपने दाता का मुंह ताकने लगते।
हाजीजी इतने पर नहीं रूकते--''इससे अच्छा मस्जिद कमेटी की तरफ़ से यतीम, मजबूर, विधवा आदि को बंटने वाले फ़ितरा-सदका के पैसों के लिए दरख़्वास्त लगा दो पहलवान!''
अब्बू को कोई बात बुरी न लगती।
हाथ आए पैसे को अहतियात से कमीज़ की जेब में रखकर हाजीजी को सलाम करते निकल जाते।
अब्बू को ज़माने से कोई शिकायत नहीं है।
बेदर्द ज़माने ने जैसा चाहा उन्हें नचाया, लतियाया, गरियाया।
यदि वह बुरा मानते तो अम्मी उन्हें छोड़ कर दूसरा मर्द क्यों बनातीं क्यों?
अब्बू जैसे सीधे-साधे इंसान को छोड़कर जाती क्यों?
सलीमा और उसकी बहनों के ख़राब दिन आते क्यांे?

इस बीच गंगाराम सर ने सलीमा से आगे पढ़ाई ज़ारी रखने को कहा।
सलीमा ने अपनी मजबूरी बताई।
परिवार चलाने के लिए ठोस आर्थिक आधार क्या हो, इस बारे में उसने गंगाराम सर से कुछ करने को कहा, ताकि जिस्म का हथियार भोथरा हो जाने के बाद भी आजीविका के लिए वैकल्पिक राह तैयार रहे।
गंगाराम सर ने उसे आश्वस्त किया कि वह कोई रास्ता ज़रूर निकालेंगे।
एक दिन सर ने सलीमा की समस्या का समाधान खोज लिया।
सलीमा अपने घर में आटा-चक्की लगा ले।
माना कि ये मामूली बजट का काम नहीं है लेकिन ऐसा होना नामुमकिन भी तो नहीं है।
उसके अब्बू आटा-चक्की चलाने का अनुभव तो है ही।
सलीमा की उम्र ज्यादा नहीं है लेकिन हालात ने उसे सयाना बना ही दिया है।
फिर सलीमा जब काम सीख जाएगी तो अब्बू को मदद हो जाया करेगी।
सलीमा के परिवार को इज़्ज़त की दो रोटी इसी काम से मिल सकती है।
एक चक्की बिठाने में कितना खर्च आता है, सलीमा ने जानना चाहा था।
गंगाराम सर ने बताया-‘‘अरे, कितना खर्च आता होगा। यही कोई पचास-साठ हज़ार रूपए ही तो।’’
सलीमा की आंखें फैल गईं-‘‘पच्चास-साठ हज्जा----र..!’’
‘‘और क्या!’’
वह बिचारी इसके अलावा और क्या कहती।
घर में तो ज़हर खाने को भी पैसे हों तो कोई बात हो।
ऐसे में पचास हज़ार रूपए एक ख़्वाब ही तो है।
सलीमा ने काले ज़मीन पर लाल फू्लों वाला सूट पहन रक्खा था।
लाल फूल जैसे सलीमा के चेहरे की तरह मुरझा गए हों----
लेकिन गंगाराम सर किसी बात से घबराते नहीं।
चिंतित सलीमा उनकी आगोश में आ गई।

सर उसकी जुल्फ़ों से खेलते हुए बताने लगे कि रूपए किस पेड़ से तोड़ कर लाए जाएंगे।
इतने ज्यादा रूपए जिस पेड़ से मिलें वह पेड़ बैंक के अलावा और कहां होगा?
गंगाराम सर की बैंक मैनेजर विश्वकर्मा साहब से अच्छी नज़दीकी है।
मैनेजर गंगाराम सर के गांव जिला-जवारी हैं।
आख़िर किस दिन काम आएंगे ऐसे सम्बंध!
बस, सलीमा को निर्णय लेना है।
घर आकर सलीमा ने अपने अब्बू से बात की।
अब्बू सलीमा की कपोल-कल्पना पर हंस दिए।
पूछा-''कहां से आएंगे इतने रूपए? तेरे अब्बू जिन्दगी भर मजूरी करेंगे तब भी इतने रूपए इकट्ठे न हो पाएंगे।''
सलीमा ने उन्हें बताया कि बैंक में जुगाड़ है, 'लोन' मिल जाएगा।
एक बार पैसे आ जाएं फिर धीरे-धीरे कजऱ् पटा दिया जाएगा।
अब्बू ने अविश्वास से उसकी तरफ देखा फिर कहा-''जो तुझे ठीक लगे कर---मेरे बस का नहीं कि मैं कहीं भाग-दौड़ करके कजऱ्ा मांगूं।''
दूसने दिन सलीमा ने गंगाराम सर को बताया कि वह बैंक से लोन के लिए प्रयास करें।
गंगाराम सर ने सलीमा को अपने घर बुलवाया।
सलीमा उनकी बाहों में थी।
गंगाराम सर ने अपने बदन की गर्मी से सलीमा के बदन की हरारत की थाह लेनी चाही।
इसी प्रयास में वह निढाल हुए।
सलीमा का मन स्थिर न था।
उसे तो पच्चास हज्जार रूपए की गड्डियां दिख रही थीं----जिसे वह गिन नहीं पा रही है।
सुरैया और रूकैया भी पगलाई हुई उन रूपयों को एक-एक कर गिन रही हैं और गिनती भूूलती जा रही हैं।
गंगाराम सर ने उसके कान में कहा कि बैंक से लोन इतना आसान नहीं है।
हां, यदि सलीमा ऐतराज़ न करे और बैंक मैनेजर विश्वकर्मा साहब के घर जाकर एक

बार मिल आए तो बात बन जाएगी।
साथ ही एक राज़ की बात ये भी बताई--"विश्वकर्मा साहब बंगले में अकेले हैं आजकल। उनके ससुर साहब की हालत ठीक नहीं है सो भाभी माईके गई हुई हैं।"
सलीमा ने आंखें तरेर कर सर को देखा।
सर ने उसे ज़ोर से भींचा।
सलीमा के दिमाग को चार सौ चालीस वोल्ट का झटका लगा।
जाने-अन्जाने ये किस राह पर वह चल निकली है।
फिर उसने सोचा कि भूख और अभाव से जूझने से तो अच्छा है कि एक बार फिर जिस्म की ताक़त का अंदाज़ा लगा लिया जाए।
वह जानती है कि राज़ की बात राज़ ही रहेगी।
गंगाराम सर, बैंक मैनेजर और सलीमा का त्रिकोण।
लेन-देन का एक अजब विनिमय है ये---!
दुनिया सिर्फ ऊपरी चमक-दमक ही देखती है, नींव के अंदर की कुरूपता से किसी का कोई सरोकार नहीं होता।
बहुत सोच-समझकर सलीमा ने गंगाराम सर से कहा कि वो तैयार है----

बात निकलेगी तो दूर तलक जाएगी---

जाने क्या हुआ कि फिर सलीमा की गंगाराम सर से मुलाकात न हो पाई।
जब से उसने सर से बैंक मैनेजर के घर जाने की बात स्वीकार की थी, वह कुछ डरी-सहमी रहने लगी थी।
एक अन्जाना भय उसे आशंकित किए रहता।
उसे लगता कि कहीं ये राज़ खुला तो क्या होगा?
लेकिन उसे मालूम होना चाहिए था कि दीवार के भी कान होते हैं।
गंगाराम सर भी उसे डराया करते कि गलती से भी इस अजीब सम्बंध की चर्चा किसी अपने से भी नहीं करना, वरना----बात निकलेगी तो फिर दूर तलक जाएगी----!
वह जितना इस दलदल से निकलने का प्रयत्न करती, उतना ही धंसती चली जा रही थी।
इस दोमुंहे जीवन से उसका दिन तो ठीक गुज़र जाता लेकिन रात में उसे दुःस्वप्न परेशान किया करते।
कभी उसे ऐसा महसूूस होता कि वह किसी अनजान जगह पर चलती चली जा रही है।
आगे एक गहरे गड्ढे के पास जाकर वह सम्भल नहीं पाती और गड्ढे में गिरती चली जाती है। उसकी सांस फूल जाती है, अंतड़ियां एंेठने लगती हैं, सिर चक्कर खाने लगता है और जचककर उसकी नींद खुल जाती है।
कभी ख़्वाब दिखता कि वह आसमान में किसी चिड़िया की तरह उड़ रही है कि अचानक लगता है कि वह पंख फड़फड़ाकर उड़ते रहने की कला भूल गई है। उसका बदन बड़ी तेज़ी से धरती की तरफ गिर रहा है और ताड़ के पेड़ की सबसे ऊंची शाख़ पर वह लटक गई है। उसका कण्ठ प्यास से सूखा है, बदन थरथरा रहा है और दिमाग एकदम खाली हो गया है।
ये सारी प्रक्रिया इतनी जल्दी होती है कि हड़बड़ाकर उसकी नींद खुल जाती है।
कभी उसे ख़्वाब दिखता कि तेज़ बारिश में वह एक उचाट मैदान में है, जिसका कोई

ओर-छोर नहीं है। तभी उसे अम्मी दिखलाई देती हैं जो खुद एक सतरंगी छतरी ओढ़े हैं और उनके हाथ में एक छोटी छतरी और है---जिसे वे सलीमा के लिए ला रही हैं। बारिश है कि बढ़ती जा रही है, सलीमा अम्मी की तरफ दौड़ती है कि छतरी लेकर ओढ़ ले और जैसे ही अम्मी के पास पहुंचती है, अम्मी की जगह कादरी मौलाना दिखलाई देते हैं। सलीमा हांफते-हांफते उल्टे कदमों भागने लगती है---जहां गंगाराम सर दिखलाई देते हैं---वह जैसे ही सर के पास पहुंचती है, सर एक राक्षस में बदल जाते हैं और खून से भीगे दांत निकाले उनका हाथ इतना लम्बा होता चला जाता है कि सलीमा बचकर भागने न पाए और इसी उहापोह में उसकी नींद खुल जाती----.

इन्ही शंका-आशंकाओं के बीच एक दिन जब वह गंगाराम सर के घर गई तो सर ने बताया कि इतवार को विश्वकर्मा साहब ने उसे अपने घर बुलाया है।

वहीं आगे की रणनीति तय होगी और गंगाराम सर इतने आश्वस्त हैं कि सलीमा को बैंक से आटा-चक्की डालने का कर्ज़ ज़रूर मिल जाएगा।

सौदा द डील

वह इतवार का दिन था।
सुबह से आसमान पर काले बादल छाए हुए थे।
बड़ा ही मनहूस मौसम था।
सर्दियों की बारिश वैसे भी कष्टदायी होती है।
सलीमा के पास अच्छी शाॅल न थी। ठण्ड काफी थी।
ठण्ड से बचने के लिए सलीमा ने सूट के ऊपर एक पुलोवर डाल लिया था। ये पुलोवर अम्मी का था। सलीमा उसे कभी न पहनती लेकिन आज उसे बैंक-मैनेजर के घर जाना जो था----
पैरों पर सस्ती चप्पल थी।
चप्पल का क्या, ये चाहे सस्ती हो या महंगी---इसे तो लोगों के घरों के बाहर ही उतर जाना है।
बैंक के पीछे अग्रवालों के मुहल्ले में विश्वकर्मा साहब किराए के बंगले में रहते हैं।
विश्वकर्मा साहब का आलीशान बंगला देखकर वह दंग रह गई।
दो मंज़िला मकान।
सामने पोर्च पर एक कार खड़ी थी।
लम्बा-चैड़ा लाॅन, जिस पर तरह-तरह के फूल-पौधे।
डरते-झिझकते उसने काॅल-बेल दबाई तो एक टकले से मोटे आदमी ने दरवाज़ा खोला।
गंगाराम सर ने विश्वकर्मा साहब का जो हुलिया बतलाया था, उसी के अनुसार सलीमा ने जान लिया कि ये जनाब बैंक मैनेजर विश्वकर्मा साहब ही हैं।
उसने झट अपना नाम बतलाया-''जी, मेरा नाम सलीमा है, मुझे गंगाराम सर ने---''
विश्वकर्मा साहब के टकले मुखड़े पर चमक कौंध आई--''ओह, सलीमा---''
और उन्होंने अंदर आने का इशारा किया।
वह उनके पीछे चलती हुई ड्राइंग-रूम लांघते सीधे शयन-कक्ष में जा पहुंची।
खूबसूरत कमरा, बड़ा सा पलंग, एक तरफ बड़ा सा श्रृंगार-टेबिल, एक बड़ी सी

आलमारी, आलमारी के बाज़ू में काउच।
विश्वकर्मा साहब की आंखें देखकर ऐसा लगता जैसे चिकने-छिले अण्डे पर काले बटन जैसी छोटी-छोटी आंखें टांक दी गई हों।
विश्वकर्मा साहब कमीज़-पैजामा पहने थे।
स्वयं पलंग पर बैठते हुए उन्होंने सलीमा को सोफे पर बैठने का इशारा किया।
सकुचाते-सकुचाते सोफे पर बैठ गई।
विश्वकर्मा साहब ने उससे पूछा कि कुछ खाएगी वह?
सलीमा क्या कहती।
विश्वकर्मा साहब उठकर बाहर निकले और लौटे तो हाथ में एक प्लेट थी।
प्लेट पर काज़ू की कतली, रसमलाई और नमकीन के साथ था एक गिलास पानी।
सलीमा ने चेहरे पर उभर आई पसीने की नन्ही-नन्ही बूंदों को दुपट्टे से पोंछा।
जबकि वह ठंड का महीना था।
विश्वकर्मा साहब स्वयं कमरे के उस कोने की तरफ बढ़े जिधर लकड़ी और कांच का एक खूबसूरत शो-केस था। उस शो-केस के ग्लास-डोर को बड़े इत्मीनान के साथ खोला उन्होंने।
वहां कांच की भिन्न-भिन्न आकार की सुंदर सी बोतलें थीं।
नीचे के हिस्से में कई आकार के गिलास थे।
पतली कमर वाला गिलास निकालकर विश्वकर्मा साहब ने एक बोतल निकाली।
सलीमा ने जान लिया कि उस बोतल में यक़ीनन शराब ही होगी।
बोतल का ढक्कन बड़ी नफ़ासत से खोल कर विश्वकर्मा साहब ने गिलास में बूंद-बूंद कर इत्मीनान से शराब टपकाई।
फिर वह टहलते हुए बाहर निकले।
लौटे तो हाथ में बर्फ के टुकड़ों से भरा एक कटोरा था।
चिमटे की सहायता से बर्फ के टुकड़े गिलास में डालकर विश्वकर्मा साहब उसके पास आकर सोफे पर बैठ गए।
सलीमा सकुचाने लगी।
विश्वकर्मा साहब ने उससे मिठाईयां खाने को कहा और खुद शराब की चुस्कियां लेने

लगे।

उन्होंने सलीमा से पूछा कि क्या वह भी ये ज़हर लेना पसंद करेगी।

सलीमा शर्मा गई और उसने इंकार में सिर हिलाया।

विश्वकर्मा साहब बोले-''हां, इस्लाम में शराब हराम है, है न!''

फिर वह ठठाकर हंस पड़े।

उन्हें देखकर लगता था कि वे बड़े इत्मीनान से उस समय को 'इंज्वाए' करना चाहते हों।

और उस दुपहर विश्वकर्मा साहब के सामने, सलीमा ने खुद को किसी 'जाम' की तरह पेश किया था---

सलीमा जैसी कोई नहीं---

मटरफल्ली से मटर के दाने निकाल रही थी सलीमा।
आलू-मटर की रसेदार सब्ज़ी बनाने की सोच रही थी वह।
मन नहीं लग रहा था उसका कि अचानक मटर की फल्ली से एक गिजगिजाता हरा कीड़ा निकला और उसकी उंगलियों में दब गया।
पच्च् से कीड़े के अंदर भरा पानी उसकी उंगलियों में आ लगा।
सलीमा का जी भिन्ना उठा।
उसे उबकाई सी आई।
सब्ज़ी के छिलके वाला सूप वहीं फेंक वह सुरैया-रूकैया की तरफ लपकी जो कि आपस में एक-दूसरे के बाल खींच कर लड़ाई कर रही थीं।
सलीमा ने दोनों के कान खींचे और एक-एक चपत उनके गाल पर जमा दी।
दोनों बहिन रोने लगीं।
उनके रोने से सलीमा का गुस्सा भड़क उठा।
वह दोनों बहनों की ताबड़तोड़ धुनाई करने लगी-''चोप्प--- अब जो मुंह से एक भी आवाज़ निकली तो मुझसे बुरा कोई न होगा---काम की काज की, दुश्मन अनाज की----जब देखो तब झगड़ती रहेंगी स्साली---सलीमा है न खटने के लिए---काहे की चिन्ता तुम लोगों को कमीनियों---!''
सुरैया तो किसी तरह चुप हो गई लेकिन रूकैया ज्यादा दुलारी थी सलीमा की। आपी ने जो पिटाई की थी उसे बर्दाश्त नहीं हो रहा था। मार खाकर वह हिचकियां ले-लेकर सुबक रही थी।
सलीमा की ममता जाग उठी।
रूकैया को सीने से लगा लिया और फिर जाने उसे क्या हुआ कि वह भी रोने लगी।
कम उम्र से ही सलीमा के कमज़ोर कंधों पर भारी ज़िम्मेदारी आन पड़ी थी।
सलीमा ने जान लिया था कि अम्मी के घर छोड़ कर जाने के बाद, अब्बू और छोटी बहनों की देखभाल उसे ही करनी है।

अब्बू तो पहले भी घर के किसी काम में दख़ल नहीं रखते थे।
अम्मी के जाने के बाद तो जैसे अब्बू एकदम संज्ञाशून्य ही हो गए।
काम पर चले गए तो ठीक और नहीं गए तो भी कोई बात नहीं।
बस, दिन भर बीड़ी के कश खींचना और चुपचाप 'रफ़्तारे-दुनिया' देख कर दंग होते रहना उनकी नियति बन गई थी।
बैंक मैनेजर विश्वकर्मा साहब ने वादा निभाया और सलीमा की आटा-चक्की चालू हो गई थी।
सलीमा ने आटा-चक्की में दिल लगा लिया था।
सलीमा के व्यवहार से गेहूं पिसाने वाले ग्राहक भी आने लगे थे।
ज़िन्दगी की गाड़ी को पटरी में लाने के लिए सलीमा कटिबद्ध थी।
लोग कहें, कहते रहें----.सलीमा ने किसी की परवाह नहीं की और अपने संरक्षकों गंगाराम सर और विश्वकर्मा साहब के संग उनका और अपना दिल बहलाना उसकी रूटीन का अंग बन गया था।
उसे कोई मतलब नहीं था कि उसकी कितनी बदनामी कस्बे में हो रही है।
वह बदनामी देखे या अपनी गृहस्थी की नांव को डूबने से उबारे----.
आखिर, उसके अभावग्रस्त बेरंग-जीवन में खुशियों के रंग तो उन्हीं संरक्षकों के कारण दिखलाई दे रहे हैं, वरना कहां सर उठाकर जी पाता उनका परिवार----
सलीमा अपनी ज़िन्दगी से नाराज़ थी और खुश भी थी।
बस उसके पास एक ही ख़्वाब था कि अब्बू की दुआओं का साया बिन मां के बच्चों पर बना रहे और छोटी बहनें पढ़-लिख लें।
आफिसों, स्कूलों और अन्य जगहों पर वह किसी लड़की या महिला को काम करते देखती तो उसे बड़ी खुशी होती।
सलीमा चाहती थी कि वह तो पढ़ नहीं पाई किन्तु उसकी बहनें पढ़-लिखकर अच्छी सी नौकरी पा जाएं। अपने पैरों पर खड़ी हो जाएं। उनके जीवन में खुदमुख्तारी आ जाए। ये सब शिक्षा से ही सम्भव हो सकता है।
और आज के दौर में शिक्षा के लिए पैसा कितना महत्वपूर्ण है।
सलीमा जानती थी कि जिस तरह की उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि रही है, उस आधार

पर इन लड़कियों के लिए ढंग का रिश्ता मिलना सम्भव न हो पाएगा।
हां, आजकल पढ़ी-लिखी कामकाजी लड़कियां अपनी पसंद के जीवन-साथी खुद ही तलाश लेती हैं। यही एक आशा थी कि सलीमा अपनी दोनों बहनों को पढ़ने के लिए प्रेरित करती।
सुरैया को आईने के सामने ज्यादा समय लगाने पर बड़ी फटकार लगाती।
कहती कि आईने से नाता तोड़ कमीनी और किताबों से रिश्ता जोड़ ले----कुछ बनना है तो खूब पढ़! एक दिन अपनी आपी की बात याद करके पछताना न पड़े तुझे।
उसने सुरैया को आगाह कर रखा था कि सकीना आपा के बेटे यूूसुफ से ज्यादा हिलना-मिलना नहीं वरना भविष्य चैपट हो जाएगा।
उन लोगों के पास सिवाए गरीबी और अभाव के है ही क्या?
सकीना आपा की सिलाई-कढ़ाई से ही घर चल रहा है।
यूसुफ तो सिर्फ उड़ाऊ-खाऊ है। अगर उसके अंदर ज़िम्मेदारी का अहसास होता तो सकीना आपा को यंूू रात-रात भर जाग कर सिलाई मशीन चलाना न पड़ता।
समझता नहीं है।
बस, चार पैसे क्या मिलने लगे कि मंहगे कपड़े, मोबाईल और पान-सिगरेट के उड़ा दिए।
ये नहीं कि सकीना आपा के हाथ में पैसे देने लगे।
बिचारी को सुई में धागा डालकर तुरपाई करते-करते चश्मा लग गया है।
कहती हैं कि सिलाई मशीन का पैडल मारते-मारते पैर में सूजन आ जाती है।
सलीमा ने कहा भी था कि ब्लड-प्रेशर चेक करा लें।
विश्वकर्मा सााहब को भी पैर में सूज़न आने की बीमारी है।
उन्होंने बताया था कि ब्लड-प्रेशर बढ़ने से ऐसा होता है।
लेकिन सकीना आपा को फुरसत कहां---
दिन भर बैल की खटती रहती हैं वह!
यूसुफ कभी मंहगी चाकलेट लेकर सुरैया से मिलने आता है और कभी चाट-समोसे लेकर।
लड़कियां होती हैं चटोरी।

उन्हें क्या पता कि मछलियों को फंसाने के लिए चारा डाला जा रहा है।
सुरैया की अंग्रेजी की राइटिंग कितनी सुंदर है। ऐसा लिखती है कि लगे छपा हुआ पढ़ रहे हों।
लेकिन अच्छी लिखावट से क्या हुआ, उसकी ग्रामर तो चैपट है। साइंस और मैथ में तो निरी गोबर है सुरैया।
रूकैया प्रतिभावान है किन्तु वो अभी छोटी है। पहली कक्षा मेेेेेेेेेेेेेे पढ़ रही है। स्कूल से आकर पहले बड़ी लगन से होमवर्क निपटाती है।
सलीमा बड़ी शिद्दत से चाहती हैं कि उसकी बहनें लापरवाही न करें, दिल लगाकर पढ़ें-लिखें।
अपनी बहनों के यूनीफार्म सलीमा खुद धोती और अच्छी तरह प्रेस किया करती कि स्कूूल के अन्य बच्चे उनकी गरीबी का मज़ाक न उड़ाएं।
अमीर आदमी फटे कपड़े पहने तो इसे उसका बड़प्पन या महानता कहा जाता है। गरीब आदमी के फटे कपड़े उसकी दरिद्रता सिद्ध करते हैं। उसे अपने फटे कपड़ों के कारण दुतकार मिलती है, उनका मज़ाक उड़ाया जाता है।
इसीलिए सलीमा चाहती थी कि उसकी बहनें जो यूनीफार्म पहनें वह साफ-सुथरी हो, ताकि उनका कोई मज़ाक न उड़ाए----
बहनों की पढ़ाई के लिए सलीमा अच्छी खासी रकम वह खर्च कर रही है।
ऐसे में साली लोग सीरियसली न पढ़ें तो सलीमा को गुस्सा क्यों न आए?
इसीलिए चपत लगा देती है सलीमा और उन्हें रोता देख खुद रोने लग जाती है।
अम्मी यदि होतीं तो उसे ये ज़हमत न उठानी पड़ती।
सलीमा अम्मी की निष्ठुरता को याद कर रोती रही बड़ी देर तक----

s

सलीमा रसोई में आलू-मटर की रसेदार सब्जी बनाते हुए सोच रही थी कि शबे-बरात भी आ गया है।
कल शबे-बरात है जिसे स्थानीय मुसलमान सुबरात भी कहते हैं।
शबे-बरात में मुसलमान अपने मुर्दा पुरखों, अज़ीज़ों को याद करते हैं। उनकी रूह को

बख़्शवाने के लिए फ़ातिहा पढ़ते हैं। शाम से सुबह फजर तक किसी समय कब्रिस्तान जाकर अपने रिश्तेदारों की कब्रों पर फातिहा पढ़ते हैं। कब्रों पर फूूूल चढ़ाते हैं। अगरबत्ती जलाते हैं। इस रात मस्जिदों में रतजगे होते हैं। रात भर जागकर इबादत की जाती है। मस्जिदों को रौशन किया जाता है। कहते हैं कि इस मुकद्दस रात में रूहें अपने लोगों से मिलने आती हैं।

मुसलमानों के तीज-त्योहार गिनती के होते हैं।

ईद की आमद से पहले रमज़ान और रमज़ान से बीस दिन पहले शबे-बरात!

अम्मी थी तो बात ही और थी।

शबे-बरात के अवसर पर अम्मी चने की दाल से लजीज़ हलवा बनाती थीं।

सूजी की मीठी कतलियां बना करती थीं।

रात के खाने में दोस्ती-रोटी, पुलाव और गोश्त भी बनता था।

जब शीरनी का सारा सामान तैयार हो जाता था तब मग़रिब की नमाज के बाद मस्जिद से मौलवी साहब बुलवाए जाते थे।

एक थाली में फ़ातिहा के लिए सभी तैयार पकवान थोड़ा-थोड़ा रखा जाता।

एक साफ गिलास में पानी भी रखा जाता।

फिर मौलवी साहब फ़ातिहा पढ़ते।

ग्यारह रूपए का चिरागा उन्हें दिया जाता था।

कितना मज़ा आता था शबे-बरात के मौक़े पर।

पूरे मुहल्ले में लोग एक-दूसरे के घरों में फ़ातिहा की शीरनी पहुंचाया करते थे।

सलीमा की अम्मी चने के दाल का हलवा बड़ा लज़ीज़ पकाती थीं।

मुहल्ले में बांटने के लिए अम्मी एक बड़े से थाल में कागज़ की पुड़िया में शीरनी सजा दिया करती थीं।

फिर उस पर एक थाल-पोश से उसे ढंक दिया जाता था।

अम्मी ने बड़ी खूूबसूूरती से क्रोशिए से जालीदार फूलोंवाला थाल-पोश बनाया हुआ था।

सुरैया को साथ लेकर सलीमा मुहल्ले के कई घरों में शीरनी पहुंचाया करती थी।

अमीर मुसलीमान घरों से ढेर सारी शीरनी आया करती थी।

इतनी कतलियां इकट्ठी हो जातीं कि रमज़ान के शुरूआती दिनों के लिए भी घर में कतलियों का जुगाड़ हो जाता।
कहते हैं कि पहले रोज़े के अफ़्तार में यदि शबे-बरात की शीरनी हो तो अफ़ज़ल होता है।
शबे-बरात के बीस दिनों के बाद रमज़ान चालू हो जाता है।

S

उसे याद हो आया कि नदी के किनारे रहने वाली चच्ची के घर शीरनी पहुंचाने के लिए एक बार वह सुरैया के साथ गई।
सुरैया तब चार-पांच साल की रही होगी और रूकैया का इस संसार में आगमन नहीं हुआ था।
अम्मी ने प्लेट में शीरनी सजा कर क्रोशिए के थाल-पोश से ढंक कर उन्हें दिया कि झट से चच्ची के घर शीरनी पहुंचा कर लौट आएं।
मगरिब के बाद अंधेरा तो हो ही जाता है।
जैसे ही मुहल्ले की सीमा खतम हुई और नदी की तरफ जाने वाली गली में पहुंची, सलीमा को डर लगने लगा। गली के किनारे एक इमली का पेड था जिस पर चुड़ैल रहती है ऐसी बात लोग किया करते थे।
उस पेड़ की झलक क्या दिखी सलीमा के पैर थम गए।
उसने सुरैया का हाथ थामा और उल्टे पैर घर वापस आ गई।
उन्हें डर था कि शीरनी न पहुंचाने के कारण मार-डांट मिल सकती है---क्या किया जाए?
जब कुछ समझ में न आया तो सोचा कि सबूूूत नष्ट करना ही बेहतर उपाय हो सकता है।
सबूत यानी शीरनी।
ये सोचकर घर के बाहर बैठ, दोनों बहनों ने पूरी शीरनी गटक ली और मुंह पोंछ कर

अम्मी के पास जा पहुंची।
बड़ी मुस्तैदी से खाली प्लेट लौटाते हुए सलीमा ने अम्मी से कहा-''जल्दी से सकीना आपा के लिए भी शीरनी दीजिए---कित्ती रात हो गई है---कल न पहुंचा दें अम्मी---?''
अम्मी ने बच्चियों को गौर से देखा और कुछ सोच कर बोलीं कि बाकी घरों में अब सुबह शीरनी पहुंचाई जाएगी।
सलीमा और सुरैया की जान में जान आई।
शबे-बरात के दूसरे दिन अल्लाह वाले लोग रोज़ा रखते और बाकी लोग शीरनी एक दूूसरें के घरों में पहुंचाया करते।
इस बहाने घर में भिन्न आकार-प्रकार की कतलियां और कई तरह के हलवे जमा हो जाते। अम्मी कतलियों को एक कनस्तर में रखतीं।
चूहों और बच्चों से बचाने के लिए एक छोटा सा ताला लगातीं---जिस ताले को सलीमा बाल-पिन की सहायता से खोल लिया करती थी।
सलीमा को मिठाई पसंद है।
कहते हैं कि लड़कियों के मिठाई पसंद नहीं होती।
लेकिन सलीमा जानती है कि अल्लाह ने गलती से उसे लड़की बनाया वरना इस समाज में वह एक लड़के की तरह तो जी रही है।
इस मिठाई चोरी की आदत के कारण सलीमा अक्सर मार खाया करती।

S

अम्मी क्या घर से भागीं तीज-त्योहार की रौनक से घर महरूम हो गया।
मुहल्ले से आने वाली शीरनी की तादाद घटती गई।
फिर धीरे-धीरे लोगों ने उनके घर का एक तरह से सामाजिक बहिष्कार ही कर दिया।
पहले बिलकीस खाला के घर से शीरनी आया करती थी, फिर वह भी बंद हो गई।
अब कब शबे-बरात आकर गुज़र जाता वे जान न पातीं थीं।
सलीमा को भी फुर्सत कहां थी कि वह तीज-त्योहारों के मोह-जाल में फंसती।

उसके पास आजीविका का संकट मुंह बाए खड़ा था।
यदि चक्की न होती तो वह लोग सड़क पर आ गए होते।
पिछले कई सालों से शबे-बरात के अवसर पर घर में फ़ातिहा नहीं पढ़वाया गया था।
फ़ातिहा के लिए शीरनी बनाना सलीमा जानती न थी, फिर किस चीज़ पर फ़ातिहा-दरूद पढ़वाया जाता।
इस साल सलीमा का मन बेताब था कि वह भी शबे-बरात के मौके पर फ़ातिहा पढ़वाए---
घर के पुरखों की भटकती रूहों के सुकून के लिए घर में अल्लाह का कलाम पढ़ा जाए---
समाज ने उन्हें बायकाॅट किया है अल्लाह-रसूल ने तो नहीं।
उसने क्या गलती की है, एड़ियां घिसकर मरने के लिए मजबूर परिवार को उसने सम्भाल लिया तो क्या ये कोई गुनाह है?
छोटी बहनें सुरैया और रूकैया को तालीम दिलाना, कमज़ोर अब्बू की देख-भाल करना क्या कोई जुर्म है?
सलीमा अपने आप को गुनहगार मानती तो है लेकिन फिर खुद से तर्क करके खुद को बेगुनाह मनवा लेती है।
भाड़ में जाए दुनिया----सलीमा ने ठान लिया कि अब वह भी शबे-बरात का पर्व मनाया करेगी और इस बहाने घर में जो मनहूसियत और एकरसता का आलम है उससे छुटकारा मिलेगा।
सलीमा को गुलाब के खुश्बू वाली अगरबत्ती की खुश्बू सुंघाई देने लगी---
अम्मी को गुलाब के खुश्बू वाली अगरबत्ती पसंद थी।
फ़ातिहा-दरूद के दिन घर के कोनों-अंतरों में गुलाब की भीनी खुश्बू महका करती थी।
अम्मी और अगरबत्ती की खुश्बू को याद कर सलीमा रोने लगी।
बहनें समझ नहीं पाई कि सलीमा क्यों रो रही है।

s

कुछ देर बाद सहज हो कर उसने सोचा कि चने के दाल का हलवा बनाया जाए।

घर में चने की दाल है ही।
हां, सूजी, शक्कर, डालडा, छुहारा, किशमिश और इलाईची की कमी है।
गोश्त तो अब्बू जाकर ला देंगे।
कुल डेढ़-दो सौ रूपए का मसला था।
पैसे तो उसके पास थे ही।
बस, ज़रूरत थी बिलकीस खाला या सकीना आपा की मदद की।
वैसे अम्मी के घर छोड़ कर जाने के बाद बिलकीस खाला ने इस घर में क़दम रखना बंद कर दिया था।
अम्मी के किस्से थमे नहीं कि सलीमा के बदचलनी के किस्सों ने सारे इब्राहीमपुर वासियों के मन में नफ़रत के गुबार भर दिए थे।
सकीना आपा की तबीयत ठीक नहीं थी।
उनका बदन नापाक था।
सलीमा क्या करती, मन मारकर उसने सुरैया को बिलकीस खाला के घर भेजने का निर्णय लिया।
यदि वह मदद को तैयार हो जाएं तो घण्टे भर में सारा सामान मंगवा लिया जाएगा।
चने की दाल को साफ़ करके पानी में एक दिन के लिए फुलाना भी पड़ता है।
उसने सुरैया से कहा कि जाकर बिलकीस खाला को सलाम कर आए और उनसे पूछे कि क्या वे कल आकर चने का हलवा और सूजी की कतली बनाने में उनकी मदद कर देंगी।
सलीमा ने ये भी कहा कि यदि घर में खालू हों तो फिर ज्यादा बात न करेगी, बल्कि कुछ देर बाद दुबारा जाकर पूछ आएगी।
बिलकीस खाला के घर से सुरैया लौटकर तुरंत ही आ गई।
वह रो रही थी।
"का हुआ रे!" सलीमा ने पूछा।
सुबकते हुए सुरैया ने बताया कि बिलकीस खाला चाय बना रही थीं। उन्होंने उसे देख कर बुरा सा मुंह बनाया था। फिर जब सुरैया ने उन्हें सलाम किया तो उसे जवाब भी न मिला। खाला ऐसा व्यवहार कर रही थीं कि उन्होंने उसे देखा ही न हो। वह अपने

काम में मशगूल रहे आईं।

सुरैया जब उनके पास पहुंची और दुबारा सलाम अर्ज किया तो बिलकीस खाला के माथे पर त्योरियां चढ़ आईं थीं।

उन्होंने सुरैया से आने का कारण पूछे बगैर ही उसे हड़का दिया-‘‘बदचलन लोगों का इस घर से क्या लेना-देना? अब दुबारा मेरे दरवाजे कदम न रखियो समझे!’’

‘‘हम लोग का ऐसे कब तक गुजारा होगा आपी!’’ सुरैया ने सलीमा से हिचकियां ले-लेकर पूछा।

सलीमा क्या जवाब देती।

उसने मन बना लिया था कि चाहे जो हो जाए, इस साल शबे-बरात के लिए घर में पकवान वह स्वयं तैयार करेगी---

सलीमा ज़िद्दी है ही----उसने मन में ठान लिया तो फिर ज़िद पूरी होनी ही थी।

उसने सुरैया को साथ लिया और किराना दुकान जाकर आवश्यक सामान की खरीददारी करने लगी।

गुलाब के खुश्बू वाली अगरबत्ती का पैकेट लिया और केवड़े की एक छोटी शीशी भी खरीदी।

अम्मी हलवा और कतली बना कर उस पर केवड़े के पानी का छिड़काव करती थीं।

तभी तो एक अलग तरह की खुश्बू उनके हलवे से उठा करती थी।

सलीमा ने अपनी स्मृति की परतों को उधेड़ने का प्रयास किया और अम्मी की स्टाईल याद करने लगी कि शबे-बरात की तैयारी वो कैसे और कहां से शुरू करती थीं।

सलीमा याद करने लगी कि अम्मी कैसे बनाया करती थीं चने की दाल का हलवा और सूजी की कतलियां!

उसकी याददाश्त में आने लगे वो एक-एक पल, अम्मी के साथ गुज़ारे लम्हात---

सलीमा सूजी का साधारण हलवा बनाना जानती थी, लेकिन सूजी की कतलियां बनाने के लिए चाशनी का अनुभव उसे न था।

अम्मी के हाथों बनी सूजी की कतलियां बड़ी कुरकुरी हुआ करती थीं।

अम्मी से मुहल्ले की औरतें शबे-बरात के आस-पास चने की दाल का हलवा बनाने का गुर सीखने आया करती थीं।

अम्मी फ़ातिहा के एक दिन पहले चने को चुन-बीनकर साफ किया करतीं और फिर उसे पानी में फूूल जाने को छोड़ दिया करती थीं।

दूसरी सुबह फजिर की अज़ान के वक्त अम्मी उठकर बड़े तड़के घर की साफ-सफाई में जुट जातीं।

उस समय घर में मिट्टी का चूल्हा हुआ करता था।

आजकल दो या चार बर्नर वाले गैस के चूल्हे होते हैं। अम्मी ने खुद अपने हाथों से एक तीन बर्नर वाला चूल्हा बनाया था। बीच में लकड़ी सुलगती और उसकी आंच दो मुहानों से निकलती। बीच में रोटी बनती, बाएं में सब्जी और दांए चूल्हे पर दूूध गरम हो जाता। लकड़ियां बुझ जाने के बाद भी चूल्हे की सेंक से रसोई गर्म रहता।

बच्चों की हड़बड़ी से चूल्हे के ठीहे टूट जाते तो अम्मी चिकनी मिट्टी जुगाड़ कर चूल्हे की मरम्मत कर लेती थीं।

गांव से दूूधवालियां जो आतीं तो उनसे अम्मी छूही मिट्टी और काली मिट्टी मंगवा कर रखती थीं। छूूही मिट्टी से सफेद लेप तैयार होता और काली मिट्टी से काला लेप। घर में दो टूूटे बर्तन थे, एक में छूूही मिट्टी फुलाई जाती और दूूसरे में काली मिट्टी।

काली मिट्टी से बार्डर बनता और फिर सफेद छूूही से बीच की जगह लीपी जाती थी।

सलीमा के उठने से पहले वह रसोई को छूही और काली मिट्टी से लीप चुकी होतीं।

उसके बाद अम्मी नहा-धोकर साफ-पाक हो जातीं और फिर नमाज़ पढ़ती थीं।

सलीमा और उसकी बहनें जब उठतीं तो देखतीं कि चूल्हा सुलगा हुआ है और उस पर चने की फूली हुई दाल को दूध के साथ बड़े से बर्तन पर उबाला जा रहा है।

जब दाल उबलकर गल जाती तब उसे ठण्डा होने छोड़ दिया जाता था।

उसके बाद अम्मी नाश्ता आदि के लिए चिंतित होतीं।

नाश्ता-पानी के बाद अम्मी चने की दाल को पत्थर के सिल पर पीसतीं।
दाल की एकदम महीन पिसाई होती।
सलीमा चाहती कि उनकी मदद करे तो उससे जो दाल पिसती वह दरदरी निकल जाती थी। अम्मी को दुबारा मेहनत करनी पड़ती थी।
इसलिए अम्मी अपने दम दाल पीसा करती थीं।
दाल जब पिस जाती तब अम्मी सलीमा को साथ लेकर आंगन के कोने में बैठ जातीं और छुहारा, नारियल की गरी के छोटे-छोटे टुकड़े बनाने लगतीं।
मेवा के नाम पर अम्मी छुहारा और नारियल की गरी ही डाला करती थीं।
छोटी इलायची के छिलके निकाल कर उसके काले-काले दानों को शक्कर के साथ मिला कर पीसने का जिम्मा सलीमा का होता।
हलवे और कतलियों में इलाइची की सुगंध ही अम्मी के हाथ की खुसूसियत ज़ाहिर करती थीं।
सलीमा को बस ये याद नहीं है कि चने के दाल के हलवे में अम्मी खोवा कब मिलाया करती थीं और सूजी की कतलियां बनाने के लिए कितने तार की चाशनी बनाई जाए कि कतलियां लिजलिजी या एकदम सख्त न होने पाएं।
इसके लिए ज्यादा सोच-विचार नहीं करना चाहिए।
जब पिसे हुए चने की दाल को घी में भूंजा जाए तभी खोवा को कद्दूकस करके डाल दिया जाएगा। खोवा तो कच्चा खाने में जब अच्छा लगता है तो चने की दाल के साथ भूनने के बाद तो लजीज़ लगेगा ही।
जहां तक सूजी के रवे से कतलियां बनाने की बात है तो उसमें कलाकारी चाहिए।
घर में सूजी है नहीं।
हां, आटा है।
आटा की कतली बनाकर प्रयोग कर लिया जाए।
यदि सफलता मिल जाएगी तो सूजी की कतलियां तैयार हो ही जाएंगी।

S

सोने से पहले सलीमा ने चना-दाल को पानी में फुला दिया।

रात में ही उसने सुरैया और रूकैया को काम दिया कि छुहारा और नारियल के टुकड़े कर डालें।
छोटी इलायची के दाने भी रात ही में निकाल लिए।
सुबह सलीमा जब उठी तो अम्मी के तेवर लिए हुए।
फजिर की अज़ान से उसकी नींद खुली।
उसने उठकर वजू बनाया और फजिर की नमाज़ अदा की।
उसके बाद उसने सुरैया को डांट कर उठाया।
कमीनी सोते वक्त कपड़ों का तनिक भी ख्याल नहीं रखती।
बदन सिकोड़कर सोना जाने कब सीखेंगी ये लड़कियां।
बिंदास सोती हैं कमीनियां----
सलीमा ने उसके बेहूदेपन के लिए जमकर फटकार लगाई।
जल्दी से नहा-धोकर रसोई में आने को कहा और अम्मी की भूूमिका में आ गई।
अब्बू ने अभी बिस्तर छोड़ा न था।
रात वह बहुत खांस रहे थे।ं
सलीमा ने उन्हें रात में कफ़-सीरप पिलाया था, तब जाकर उन्हे नींद आई थी।
तब तक सुरैया और रूकैया भी रसोई में आ गईं।
सलीमा ने कढ़ाई में डालडा डाल कर उसे गर्म होने दिया।
फिर उसमें एक पाव के क़रीब सूजी डाल कर धीमी आंच में भूनने लगी।
सूजी का रंग जब लाल-भूरा हुआ तब उसने उसे उतार दिया।
फिर सलीमा ने एक बर्तन में चीनी डाली और थोड़ा सा पानी डाल कर उसे गर्म करने लगी।
आंच में चीनी खद-बद, खद-बद करते घुलने लगी।
सलीमा ने अम्मी के मुंह से सुन रखा था एक तार की चाशनी, दो तार की चाशनी और तीन तार की चाशनी।
चीनी जब घुल गई तो उसने अम्मी की स्टाईल में बर्तन में चम्मच डाल कर धीरे से चम्मच को उठाया।
चीनी का घोल चम्मच के कोर से टपकने लगा।

तब सलीमा को ध्यान आया कि इसी धार के खत्म होते ही जब बूंद में चाशनी टपकती है तब उससे जो तार सा बनता है उससे ही चाशनी के मोटेपन का अंदाज़ा लगाया जाता है।

चम्मच से टपकती आखिरी बूंद से एक तार के बराबर महीन रेखा बनी।

इसका मतलब है कि अभी चाशनी एक तार की बनी है।

उसने थोड़ा देर इंतजार किया।

फिर जब चम्मच डाल कर एक बूंद की थाह लेनी चाही तो तकरीबन तीन तार का रस उस बं़ूद से बना।

सलीमा ने जान लिया कि अब भुनी हुई सू़ूजी में इस चाशनी को एक-समान मिला दिया जाए।

थोड़ा मेहनत लगी और सू़ूजी अच्छी तरह से चाशनी के संग मिल गया।

अब उस मिश्रण को उसने एक थाली में फैला दिया।

मिश्रण धीरे-धीरे सख्त होने लगा।

उसने चाकू से उसके बर्फीनुमा टुकड़े कर दिए।

ठंडा होने पर उसने देखा कि काफी सख्त हो गए थे टुकड़े। इसका मतलब सलीमा सूजी की कतलियां बना सकती है।

सलीमा काफी खुश हुई।

और खुश हुईं सुरैया, रूकैया----

होती भी क्यों न!

जब बिलकीस खाला ने कतली बनाने में मदद करने से इंकार कर दिया था तब कितनी दुखी हुई थी सुरैया---

अब नम्बर आया चने के दाल का हलवा बनाने का।

सुरैया को उसने दाल पीसने का काम दिया।

दाल पिस गई तो उसे भी डालडा में भून लिया।

पूरे े घर में मिष्ठान्न की खुश्बू भर गई थी।

अब्बू भी उठकर रसोई में आ गए।

सलीमा ने चने के हलवे में जब पिसी इलायची डाली तो रसोई गमकने लगी।

सुरैया ने कहा---"हुर्रे----सलीमा आपी जिन्दाबाद---!"
सलीमा ने अब्बू को चाय पीने को दी और कहा कि आधा किलो गोश्त ले आएं।
आज सलीमा दोस्ती रोटी भी बनाएगी, फिर अब्बू से ही फातिहा पढ़वाएगी।
सुरैया सोच रही थी कि सलीमा आपी जो मन में ठान लेती है, पूरा करके ही दम लेती है।
यही तो वह बात है जिसने सलीमा को टूटने से बचाया हुआ है!
सलीमा ने अब्बू से उस शीरनी पर शबे-बरात की फ़ातिहा पढ़वाई थी---
गुलाब के फूलों वाली अगरबत्ती की खुश्बू से पूरा घर उस रात मुअ़त्तर रहा!

लोगों का काम है कहना---

सुरैया के बारे में सलीमा का आकलन गलत निकला।
सलीमा ने महसूूस किया कि सुरैया के हाव-भाव बदल रहे हैं।
यूसुफ जब आता तो सुरैया उसके मोबाईल पर गेम खेलती।
सलीमा के पास एक मोबाईल था लेकिन वह सिर्फ फोन करने और एसएमएस करने के काम का था। उसमें ज्यादा सुविधा नहीं थी।
मेमोरी कार्ड न था सो गाना-पिक्चर की गुंजाईश न थी।
विश्वकर्मा साहब ने उसे मोबाईल गिफ्ट किया था।
यूसुफ के मोबाईल में चार जीबी का मेमोरी कार्ड है।
जाने कितने गाने नए-पुराने उसकी मोबाईल में सुरक्षित है।
कुछ गानों का वीडियो भी था उसमें।
सुरैया यूूूसुफ के आते ही उससे मोबाईल मांग लेती और पागलों की तरह गाने सुना करती। कभी गेम खेला करती। कभी वीडियो देखा करती। कभी यूूसुफ से नए-नए गाने सुनने की फरमाईश किया करती। यूूसुफ भी उसकी फरमाईश के मुताबिक गाने डाल कर लाता।
सलीमा को सुरैया की ये आदत एकदम न भाती।
यूूसुफ केेेेेेेेेे जाने के बाद वह सुरैया को उल्टी-सीधी सुनाया करती।
सुरैया उसकी नसीहतों को एक कान से सुनकर दूूसरे कान से निकाल देती।
इस कारण सुुरैया पढ़ाई-लिखाई में कमज़ोर होती गई।
जबकि रूकैया छुटपन से ही सलीमा आपा की नकल करने की कोशिश करती।
दिन-भर बड़े मनोयोग से स्लेट पर चाक से जाने क्या-क्या गोदा करती।
सलीमा फुरसत के लम्हात में उसे पढ़ाई करने के लिए उकसाया करती।
रूकैया के लिए उसने स्लेट-पेंसिल खरीद दी थी। नन्ही रूकैया दिन-भर उस स्लेट पर क-कमल और ख-खरगोश लिख कर मिटाया करती। कभी वह आड़ी-तिरछी लकीरों के ज़रिए कई तरह के आकार गढ़ती और सलीमा को दिखला कर शाबाशी पाती।

ज़िन्दगी की गाड़ी पटरी पर लगी दौड़ने तब सलीमा ने अपनी छोटी बहन रूकैया को स्कूल में डाल दिया।

मंझली सुरैया की पढ़ाई-लिखाई में कोई रूचि न थी।

बनना-संवरना और यू़सुफ से दिलजोई करना सुरैया को पसंद था।

उसके लिए सलीमा चिंतित रहा करती थी।

एक दिन गंगाराम सर ने सलीमा को सलाह दी कि सुरैया को क्यों नहीं ब्यूटी-पाॅर्लर वाला काम सिखवा दिया जाए। इस बहाने वह काम सीखते-सीखते, थोड़ा-मोड़ा घर-खर्च भी निकाल लिया करेगी।

जब अच्छी तरह काम सीख जाएगी तो उसके लिए ब्यूटी-पाॅर्लर खोल दिया जाएगा।

आजकल तो हर मजहब और जाति की औरतें ब्यूटी-पाॅॅर्लर जाती हैं।

सिर्फ आई-ब्रो बनाने के सौ-पचास मिल जाते हैं। फेशियल, हेयर-स्टाईलिंग, मसाज आदि में तो अच्छी कमाई है, बस ग्राहक की पसंद का ख्याल रखा जाए----.

सलीमा को गंगाराम सर का आईडिया पसंद आया।

सलीमा जब भी गंगाराम सर से मिलने जाती तो उनकी खूब खिदमत करती।

एक-दो साल के बाद वो रिटायर हो जाएंगे।

फिर अपने गांव चले जाएंगे।

जहां उनकी ज़मीन है, खेती है, पत्नी है।

उनकी पत्नी सनकी हैं---

धुर-देहाती हैं----

खूब व्रत-पू़जा किया करती हैं---

गंगाराम सर बताते हैं कि दिन में पचासों बार हाथ धोती है ससुरी और उसके बाद भी उसे यकीन नहीं होता कि उसके हाथ साफ हुए हैं।

बर्तन को कई-कई बार साफ करने के बाद भी परसने के पहले एक-दो बार और धोएगी।

बिस्तर पर चादर हर रात बदलेगी---

जाने कैसा रोग है उसे?

इसीलिए गंगाराम सर ने अपनी बीवी को गांव में ही बने रहने दिया।

S

गंगाराम सर की सलाह पर सलीमा ने सुरैया को ब्यूटी-पा्ॅर्लर जाने दिया।

इब्राहीमपुरा के मुसलमान वैसे भी मम्दू पहलवान के परिवार से ख़फ़ा रहा करते थे, उस पर ये करेले के साथ नीम वाली मिसाल भी हो गई।

सुरैया का ब्यूटी-पार्लर जने लगी।

ब्यूटी-पार्लर नगर में एक ही था लेकिन उसके बारे में लोगों के ख़्याल अच्छे न थे।

इस्लाम में लोगों के दिखाने के लिए बनना-संवरना मना है।

परदा-प्रथा है, बुरका न भी पहना जाए लेकिन बाहर निकलने पर औरतों को सिर और बदन एक चादर या दुपट्टे से ढंकना चाहिए।

औरतों के लिए भौं के बाल नुचवाना मकरूर है।

आए दिन मौलाना अपनी तकरीरों में भौं नुुचवाने वाली औरतों-लड़कियों को जहन्नुम की यातनाओं-अज़ाबों की याद दिलाकर डराया करते।

औरतें मानें तब न----आजकल तो हाजियों के घर की पर्दानशीन बहू-बेटियां ब्यूटी-पार्लर की सेवाएं लिया करतीं हैं।

औरतों के मोबाइल में और किसी का नम्बर हो न हो, ब्यूटी-पार्लर का नम्बर ज़रूर मिल जाएगा।

भौं जहां एक बार नुचवाई गई तो फिर उसे हर माह सेट कराना ज़रूरी होता है, वरना गौर से देखने पर चेहरा अजीब दिखने लगता है।

एक बार बाल सेट करवा लो तो फिर हर माह उसे सेट कराना पड़ता है।

खास मौकों पर ब्लीचिंग, फेशियल आदि न करवाया जाए तो कै

शादी-ब्याह और तीज-त्योहार के अवसर पर मुसलमान औरतों को ब्यूूटी-पार्लर में ब-कसरत देखा जा सकता है।

ब्यूटी-पार्लर जाएं भी क्यों न औरतों।

एक तरफ आप मना करते हैं उन्हें और दूसरी तरफ टीवी के उर्दू चैनलों में दिखने वाली मुसलिम औरतें कितना मेकअप करके आती हैं। दुपट्टे को इतने हिसाब से लपेटा जाता है कि चेहरा पूरा नज़र आए।

ये मुसलिम लड़कियां और औरतें मेकअप के कारण ही खू़ूबसू़ूरत दिखा करती हैं। उनके चेहरे इन मौलानाओं को पुरनू़र दिखते हैं और यही मेकअप यदि गांव-खेड़े की मुसलिम लड़कियां कर लें तो हाय-तौबा मचा देते हैं।
सलीमा लोगों की परवाह नहीं करती।
वह जानती है कि आज के दौर में बिना हुनर के जिन्दा रहना मुश्किल है। औरतों को पढ़-लिख कर कोई काम तलाश लेना चाहिए या फिर ब्यूटीशियन, बू़टिक आदि काम सीख कर नियमित आय का जुगाड़ बना लेना चाहिए।
आखिर कब तक औरत पैसे के लिए मर्द का मुंह ताकेगी?
सलीमा जानती है कि कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना!
गंगाराम सर ने सलीमा को अपनी बाहों के घेरे में लेते हुए अगली पंक्ति पूरी की-
‘‘छोड़ो बेकार की बातों को
कहीं बीत न जाए रैना---!’’

ज़माना ख़राब है----

आटा-चक्की की आवाज़ कुछ बढ़ सी गई है।
सलीमा ने मेकेनिक गफूर भाई को बुलवाया था, आए नहीं।
अब्बू की तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए उसने गफूर भाई को बुलवाया था।
लगता है कि चक्की का पट्टा कुछ ढीला हो गया है।
सलीमा ढीले पट्टे को 'टाईट' कर लेती है लेकिन लगता है कि 'टेंशन-स्क्रू', खराब हो गया है जो स्क्रूर टाईट करने पर भी पट्टा ढीला ही रहे आता है।
आटा-चक्की के बढ़े हुए शोर से सलीमा का दिमाग खराब होने लगा।
उसने अब्बू के औजार का थैला उठाया और सुरैया को मदद करने के लिए आवाज़ लगाई।
सुरैया ने तीसरी गुहार पर जवाब दिया---
सलीमा को गुस्सा आ गया।
वह ताव-ताव में अंदर गई तो देखा कि सुरैया आईने के सामने खड़ी बाल संवार रही है।
सलीमा को गुस्सा आ गया।
सुरैया की पीठ पर एक धौल जमा दिया।
सुरैया कुछ न बोली लेकिन उसने सलीमा को तेज़ निगाहों से घूर कर देखा और ढीठता के साथ अपने बालों को संवारती रही।
सुरैया की उन निगाहों में डर नहीं था बल्कि बगावत की किरणें थीं---
उन निगाहों में हया नहीं थी बल्कि बदतमीजी के शो'ले थे..
उन निगाहों में प्रायश्चित नहीं था बल्कि बदले की भावना थी---
सलीमा डर गई।
ये वो सुरैया नहीं है जिसे उसने इतने जतन से पाला-पोसा और बड़ा किया है।
ये वो सुरैया नहीं है जो दिन-रात उसके पीछे-पीछे आपी-आपी कहती घूमा करती है।
ये वो सुरैया नहीं है जो सलीमा को अपनी मां से बढ़कर प्यार करती है।
क्या हुआ सुरैया को---?

ब्यूटी-पा्ॅर्लर जाकर अभी उसने सारा हुनर भी तो नहीं सीखा है।
पहले ढंग से काम तो सीख ले सुरैया---इतनी अकड़ इस चिरैया को कहां से आ गई?
सलीमा के होश उड़ गए थे।
चक्की को ठीक करना वह भूल गई।
बीस घरों से आए गेहूं को निपटाना वह भ्ूल गई।
सलीमा नहीं चाहती थी कि उसने अपनी ज़िन्दगी के लिए जो रास्ते चुने उस पर उसकी बहनें चलें लेकिन वह क्या करे?
सुरैया के ऐसे रंग-ढंग ने उसके होश उड़ा दिए।
कितनी अजीब बात है कि यही सुरैया जब घर में होती है तो एकदम छोटी-नादान बच्ची जैसा व्यवहार करती है।
तनिक भी आभास नहीं होता कि उसे अपने जिस्म और मन में होने वाले भौगोलिक, भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों की कोई जानकारी भी है?
ब्यूटी-पार्लर जाकर अपनी मालकिन के संगत में अब उसमें कुछ ढीठता के लक्षण नज़र आने लगे हैं।
वह सलीमा से भी मुंह लड़ाने की कोशिश करने लगी है।
सलीमा ने सपने में भी नहीं सोचा था कि सुरैया उससे दुर्वयवहार करेगी----
ज़माने की ऊंच-नीच से बेपरवाह, कुंवारी-देह की कच्ची खुश्बू से तर सुरैया क्या वाक़ई उतनी भोली है, जितनी नज़र आती है।
सलीमा ने जो भी अपने अनुभवों से सीखा-जाना था उसके अनुसार उसे खुद पर भी पक्का भरोसा नहीं होता था। वह जब खुद पर शक कर सकती थी तब सुरैया के प्रति उसके मन में संदेह के बीज क्यों न अंकुरित होते।
अब्बू ठहरे वीतरागी, त्यागी।
उन्हें मतलब नहीं कि जवान होती बच्चियों के लिए उनकी क्या ज़िम्मेदारियां हैं?
यदि समय रहते बच्चियों शादी न हुई तो फिर इसका समाज पर क्या असर पड़ेगा?
सलीमा ने बचपन ही में किशोरावस्था और जवानी के दीदार कर लिए हैं। अब वह वैसे भी अधेड़ दिखती है। उसका तो ब्याह होने से रहा। सलीमा सोच भी नहीं सकती कि उसे शादी भी करनी है। उसे न तो हल्दी लगेगी, न मेंहदी। न उसके लिए दुल्हन का

जोड़ा ही आएगा।
सलीमा अच्छी तरह जानती है कि सोलह-सिंगार उसके नसीब में नहीं।
उसकी डोली उठेगी और न वह बाबुल को याद कर रो पाएगी।
हां, एक बात की गारण्टी है कि चार भाई ज़रूर उसे एक ऐसी डोली में उठाएंगे जिसका रास्ता कब्रिस्तान के अंधेरों में जाकर खत्म होता है।
कहीं उसी के जैसा नसीब तो उसकी बहनों ने नहीं पाया है।
अम्मी की हरकत के कारण पूरी बिरादरी और समाज में उनकी बड़ी थू-थू है।
अब्बू सलीमा को खटते देखते और चुपचाप बीड़ी के कश खींचा करते।
अब्बू का कोई यार-दोस्त न था, सिवाए उस हुनर के, जिसकी वजह से नगर-गांव के लोग हड्डियां बिठाने आते थे।
सलीमा जानती है कि अब्बू दारू न पिएं तो जिएं भी नहीं।
सलीमा ही तो है जो अब्बू के दुख-दर्द बखूबी जानती-बूझती है।
कितना अच्छा है कि अन्य 'दरूआ' लोगों की तरह अब्बू दारू पीकर सड़क पर नहीं लोटते, न किसी को मारते-गरियाते।
बस, चुपचाप ठेके जाकर देसी दारू की एक पाउच ले आएंगे और रात का खाना खाने से पहले उसे हलक के नीचे उतार लेंगे।
यदि किसी कारण हड्डियां या नस बिठवाने वाले मरीज़ नहीं आते तो अब्बू को दस-बीस रूपए सलीमा दे देती है।
अब्बू सिर्फ नाम के मुसलमान हैं।
जब रमज़ान का पवित्र माह आता अब्बू में अजीब तब्दीली आती।
वो रमज़ान का बड़ा एहतराम करते और चांद दिखने के बाद दारू छोड़ देते थे।
जब ईद का चांद दिखता उसके बाद ईद की नमाज़ अदा कर वह ठेके पर जाकर दारू ले आते।
अब्बू रोज़ा नहीं रखते, लेकिन दिन के समय कहीं बाहर खाना-पीना या कि बीड़ी नहीं फूंका करते हैं। रमज़ान के महीने में उनकी बीड़ी का खर्च ज़रूर बढ़ जाता है।
मस्जिद के पास घर होने के बावजूद अब्बू कभी भी नमाज़ पढ़ने नहीं जाते।
वह सिर्फ ईद, बकरीद के दिन ईदगाह जाकर नमाज़ अदा करते हैं और किसी की मौत

पर जनाजे की नमाज़ मे शामिल ज़रूर होते हैं।
अब्बू पर सलीमा को बहुत दया आती है।
पूरा इब्राहीमपुरा जानता है कि अपने समय में अब्बू एक मज़बूत इंसान हुआ करते थे।
हादसात की आंधी में फंसकर तो बड़े-बड़े पेड़ धरासाई हो जाते हैं।
फिर खराब समय के आगे अब्बू की क्या औक़ात!
सुरैया की घूरती निगाहों से खौ़फ़ज़दा सलीमा ने अपने कमरे जाकर अब्बू के लिए
सलीमा आटा-चक्की के पट्टे के ज्वाइंट पर दो-तीन हथौड़ा मारा और जब चक्की चालूू की तो खटर-पटर की आवाज़ कम हो गई।
फुर्ती से उसने बीस घरों के गेहूं पीस लिए।
उसका चेहरा और दुपट्टे से बंधा सिर आटे की गर्द से अट-पट चुका था।
उसने चक्की का मेन-स्विच आॅफ किया और आटे की गर्द उड़ाने लगी।
घर के अंदर से धींगामुश्ती की आवाज़ें आ रही थीं।
सलीमा ने सोचा कि इन दोनों बहनों सुरैया और रूकैया में कब ज़िम्मेदारी का अहसास जागेगा? कब तब ये दोनों लाड़ की लल्लो बनी रहेंगी?
अब बच्चियां तो रह नहीं गई हैं दोनों।
अब तो उनमें गंभीरता आ जानी चाहिए ताकि जिन्दगी की असलियत को जानने-समझने लगें।
कब तक ये दोनों छोरियां अपनी बड़ी बहन की उंगलियां थामे चलेंगी?
सलीमा ये नहीं चाहती थी कि जिस तरह खुद उसने जिन्दगी की तल्ख़ियों का स्वाद चखा है, वैसा नसीब छोटी बहनों का हो।
वह अपनी बहनों को इस बेदर्द-बेमुरव्वत ज़माने की कड़वी हक़ीक़तों से बचाना चाहती थी।
यदि जेठ की तपती दुपहर में घर से बाहर निकलने का कोई काम आ पड़े तो सलीमा बहुधा चाहती कि अपनी बहनों को चिलचिलाती धूप में बाहर भेजने से अच्छा वह खुद चली जाए।
सलीमा अक्सर सुरैया और रूकैया को समझाया करती कि कच्ची-कोमल कलियों को कुचलने- मसलने के लिए संसार में एक से एक बहुरूपिए बैठे हैं।

ये बहुरूपिए मर्द, रूप बदल-बदल कर उनके सामने आते हैं और नोचने-खसोटने का उपक्रम करते हैं।
इन मर्दों से खुद को बचाना ही असली लड़ाई है।
लेकिन सुरैया और रूकैया कहां समझने वाली।
दोनों का जिस्म है कि गदराता जा रहा और लड़कपना है कि छूटता नहीं।
दोनों बहनों के लड़ने-भिड़ने की आवाज़ें बाहर तक आ रही थीं।
लगता है कि घर के अंदर सुरैया और रूकैया के बीच घमासान छिड़ा है।
अंदर जाने से पहले सलीमा ने गल्ले के पास बैठ कर समें इकट्ठा हुए पैसे निकालकर गिने। पैसों के मामले में सलीमा किसी पर भरोसा नहीं करती।
पूरे उन्चास रूपए थे।
एक कम पच्चास!
यानी आज के आधे दिन की कमाई ठीक ही है।
शाम तक डेढ़-दो सौ रूपए की आमदनी इस चक्की से हो जाती है।
कभी-कभी तीन-चार क्ंविटल गेहूं पीसने का आर्डर आ जाता है तो फिर रात जागकर वह चक्की चलाती है।
अब सलीमा ने आंगन से उठती बहनों की खिलखिलाहट की आवाज़ सुनी।
कभी ऐसा लड़ेंगी चुड़ैलें कि लगे खून पी जाएंगी एक-दूजे का और कभी दोनों में इतना प्रेम कि नज़र न लगे उनकी जोड़ी पर।
जितना रोती हैं दोनों, उतना हंसती भी हैं।
फिजूल के ठहाके।
लोग अचानक देखें तो यही समझें कि किसी जिन्न-चुड़ैल का साया हो उन पर।
सलीमा अपनी बहनों के बरअक्स एकदम उलट है। वह अक्सर संजीदा रहती है।
बहुत हुआ तो मुस्कुरा देगी।
खिलखिलाकर हंसे तो उसे मुद्दत हो गई होगी।
सलीमा अपने कपड़े पर छाई हुई आटे की सफेद धूल झाडने लगी।
अंदर रसोई जाने के लिए एक अंधेरा गलियारा है। गलियारे के दाहिने एक कमरा है। ये कमरा उन तीनों बहनों का कमरा है। गलियारा और रसोई के बीच छोटा सा खुला

हुआ आंगन है। आंगन में एक तरफ जब अम्मी रहा करती थीं तो छोटा सा बगीचा हुआ करता था। अब वहां एक अमरूद का पेड़ है। जिस पर साल में दो बार अमरूद फलता है।

रसोई की दीवार पर एक आईना फिट किया हुआ था।

इसे अम्मी ने ही फिट करवाया था, ताकि अब्बू को यदि दाढ़ी-मूंछ ठीक करना हो तो उस आईने के सामने खड़े होकर बना सकें। अंदर कमरे में इतना अंधेरा रहता है कि वहां बिना रोशनी किए आईने में अपना अक्स देख पाना मुश्किल है।

सलीमा की हालत देख सुरैया और रूकैया फिर हंसने लगीं।

सलीमा ने आईने में स्वयं को देखा और वह खुद मुस्कुरा उठी।

उसके चेहरे पर आटे की धूल छाई हुई है। ओढ़नी से सिर ढंका था वरना बालों में आटे की धूल छाने से बाल रूखे हो जाते हैं।

यदि गोल शीशे वाला चश्मा वह लगा ले तो चांद पर चरखा चलाती बूढ़ी दादी अम्मा जैसी दिखलाई पड़े।

उसने दुपट्टे से अपना चेहरा साफ किया।

बालों पर हाथ फेरकर संवारा।

उसके सिर पर काले बालों की तादाद घट गई है, ज़्यादातर बाल सफेद हो चुके हैं।

सुरैया अक्सर सलीमा को टोकती कि आपी, आप बाल काले क्यों नहीं करातीं?

कभी कहती कि बोलो तो बाल काले कर दूं। मिन्टों में बाल काले हो जाएंगे।

तुम अभी से बुढ़िया क्यों दिखना चाहती हों?

हज्जन बूबू की बिटिया साज़दा तो तुम्हारे साथ की है। देखो अभी भी कितनी जवान दिखती है जबकि दो बच्चों की मां बन चुकी है।

सलीमा क्या जवाब देती।

उसने आईने में अपने चेहरे को ग़ौर से देखा।

पिचके हुए गाल। गर्दन और माथे पर झुर्रियां। आगे के दो दांत टूटे हुए। चोंचदार नाक सूखे चेहरे पर कुछ और ज्यादा उभरी हुई दिखती।

आंखें कभी बड़ी हुआ करती हांेगी, अब तो ऐसा लगता है कि चेहरे पर दो गहरे काले गड्ढे हों।

फिगर भी ऐसा कि जैसे टीबी की मरीज़ हो।
बदन पर कहीं भी मांसलता और उतार-चढ़ाव नहीं।
चपटा सपाट सीना, लम्बे पतले हाथ, लकड़ी की टहनियों जैसी टांगें।
जिस्म पर मांस का नामो-निशान नहीं।
सलीमा जानती है कि वह कभी सुंदर नहीं हुआ करती थी। हां, सांवली रंगत, दुबला-पतला जिस्म, लम्बा चेहरे वाली सलीमा किशोरावस्था में ज़रूर आकर्षक दिखती होगी। वैसे भी लोग कहते हैं कि जवानी में तो गदहिया भी सुंदर दिखती है।
कितनी जल्दी उसका जीवन-रस चुक गया।
कांतिहीन सलीमा---कुरूप सलीमा----रूखी-सूखी सलीमा।
सलीमा उस नदी की तरह हो गई थी जिसका पानी सूख गया हो और रेत की जगह मिट्टी के लोंदों ने ले ली हो।
सलीमा की देह एक ठूंठ की तरह है।
अब तो उसके चेहरे पर कारोबारी रूखापन जड़ें जमा चुका है।
सलीमा किसी अंधेरी कोठरी में किसी चोर-बिस्तर पर बिछ तो सकती है, लेकिन धूम-धाम से किसी के लिए सजना उसके नसीब में नहीं।
अच्छा ही तो है।
सलीमा चाहती भी नहीं कि उसका कुछ बने, हां उसके मन में है कि किसी तरह सुरैया का जुगाड़ लग जाए। सुरैया का घर बस जाए।
अम्मी रहती तो वही इधर-उधर आती-जातीं। देखती-सुनतीं।
अब्बू को तो घर से कुछ लेना-देना नहीं।
उन्हें ये भी पता नहीं रहता कि उन्होंने नाश्ता किया है या नहीं। खाना खाया है या नहीं।
बस, चैबीस घण्टे गुम-सुम रहा करते हैं।
सलीमा यदि उनका ख़्याल न रखे तो जाने क्या हो?
सलीमा अब्बू के साथ-साथ सुरैया और रूकैया का भी ख्याल तो रखती है!

जिसके आगे राह नहीं---

सोलह-सत्रह की है सुरैया।
बड़ी अजीब काया है इसकी---
कभी देखो तो बच्ची, कभी देखो तो युवती---
भरे-पूरे बदन वाली सुरैया यदि साड़ी पहनती तो एकदम औरत दीखती।
यदि सलवार-सूट पहनती तो स्कू्ूल-गर्ल नज़र आती।
हां, एक बात ज़रूर है कि ई सुरैया ससुरी हमेशा बनी-ठनी रहा करती और सलीमा की डांट खाके और मुटियार बनी रहती।
सुरैया के नक्शे-क़दम पर छुटकी रूकैया भी चलने की कोशिश कर रही थी।
पढ़ना-लिखना एकदम नहीं और दिन-भर बनना-संवरना।
सलीमा को भी यही लगता कि सुरैया के रंग-ढंग ठीक नहीं हैं।
सुरैया अपना अधिकांश समय आईने के सामने गुज़ारा करती है।
पहले ऐसा नहीं था, लेकिन आजकल सलीमा ने एक नई बात नोट की है।
उनकी आटा-चक्की के सामने से गुज़रने वाले लड़के, अक्सर चुहल करते गुज़रते हैं। बात-बेबात ठहाके लगाते हैं। कनखियों से चक्की और छत की तरफ देखकर आहें भरते हैं।
जैसे सुरैया की एक झलक पाने के लिए बेताब हों---
उधर यू्ूसुफ भी सलीमा के घर अब ज्यादा आने-जाने लगा था।

एक दिन सलीमा ने सुरैया के हाथ में एक नया मोबाईल सेट देखा। बड़ी सी स्क्रीन वाला मोबाईल। जिसके स्क्रीन पर उंगली का स्पर्श होते ही जाने क्या-क्या होने लगता है। आजकल के बच्चे बड़ी आसानी से मोबाईल चला लेते हैं। सलीमा को बड़ा डर लगता है ऐसे मोबाईल छू्ने में भी, कहीं खराब हो गया तो?

सुरैया अक्सर कहती है कि सलीमा का मोबाईल यदि गुम भी गया तो पाने वाला

घण्टे-भर बाद पूछते-पाछते आकर मोबाईल वापस दे जाएगा----वैेेसे पत्थर की जगह किसी को फेंक मारना हो तो सलीमा का मोबाइल 'बेस्ट-आॅप्शन' है---

सुरैया के हाथों यूूसुफ का कीमती मोबाईल देख सलीमा का माथा ठनका।

सुरैया बड़ी बेहयाई से हंस-हंस कर किसी से बातें कर रही थी।

सलीमा को गुस्सा आया। उसने बढ़कर सुरैया के हाथ से मोबाईल छीनना चाहा।

सुरैया ने सलीमा को घूरकर देखा, जैसे निगाहों-निगाहों में उसे खा जाएगी।

सलीमा ने गुस्से में सुरैया के गाल पर एक थप्पड़ बजा दिया।

सुरैया रोने लगी।

रूकैया किताब-कापी छोड़ सहमी हुई आ खड़ी हुई।

तभी मस्जिद से मग़रिब की अज़ान की आवाज़ गूूंजी---''अल्लाहो अकबर---अल्लाहो अकबर---''

सलीमा ने सर पर दुपट्टा डाला और सलीमा की हिचकियां बंद हो गईं। कहते हैं कि अज़ान की आवाज़ सुनो तो सिर्फ और सिर्फ अल्लाह को याद करो। अम्मी बताया करती थीं कि अज़ान के वक़्त ख़ामोश रहा जाए और अज़ान सुनकर अल्लाह से रहम और मगफिरत की दुआ मांगी जाए।

अज़ान खत्म हुई तो सलीमा ने पूछा-''कहां से आया ये मोबाईल---?''

सुरैया बुदबुदाई-''यूसुफ ने अपना पुराना मोबाईल मुझे गिफ्ट किया है। उसके के पास ढेर सारे मोबाइल हैं सलीमा---यूूसुफ ने अपने लिए थ्री-जी मोबाईल खरीद लिया है।''

''ठीक है---मान लिया कि उसने मोबाईल तुझे दिया है---इसकी इंक्वारी बाद में, पहले ये बता कि ये सिम तुझे कहां से मिला कमीनी---?''

सुरैया दुपट्टे के कोर से आंसू पोंछते हुए बोली--''सिम तो यूसुफ का है---बोलता है कि उसके पास ऐसी कई सिम हैं---जाने कहां से पाता है इतनी सिम----!''

सलीमा ने उसे घूरकर देखा और चेहरे पर सच्चाई तलाशने लगी--''जानती है कितना मंहगा मिलता है ऐसा मोबाईल---फिर वो तुझे काहे गिफ्ट करेगा रे---का चक्कर है तुम दोनों के बीच---?'

एक साथ कई सवाल---

सलीमा कैसे समझाए भोली-भाली बहन सुरैया को कि कोई 'अइसई' किसी को

गिफ्ट नहीं देता। ये गिफ्ट नहीं बल्कि चारा है---जैसे मछली या चिड़िया को फांसने के लिए चारा डाला जाता है। सुरैया वैसे भी खूबसूरत है।

यू्ूसुफ जैसे हजारों लड़के उसकी देह पर मर सकते हैं---लेकिन ये रूप के लोभी भंवरे होते हैं---फूल का रस चूस कर उड़ जाने वाले भंवरे----सुरैया समझती काहे नहीं। अरे---इन सबके लिए उमर पड़ी है----पहले कुछ बन तो लो----
इन मर्दों को तो बस उपयोग करना आता है, निभाना नहीं आता----

सलीमा ने सुरैया के हाथ से मोबाईल झटक लिया और कहा कि वह यूसुफ के घर जाकर मोबाईल वापस कर आएगी और सुरैया को ऐसा हुनर सिखाएगी कि वह खुद अपनी एक नम्बर की कमाई से ऐसे कई मोबाईल खरीदेगी----
पता नहीं कहां से लाता है ये यूसुफवा इत्ते सारे मोबाईल----
का मोबाईल पेड़ पर फलते हैं जो तोड़ लाता है वो---
ज़रूर कहीं से चोरी का माल हाथ आ गया है उसके, वरना इतने मंहगे मोबाईल सेट खरीदने की कुव्वत उसमें कहां?

सकीना आपा बिचारी कमनज़री के साथ सिलाई-मशीन की सुई में धागा कितनी देर में डाल पाती है। एक ब्लाउज़ की सिलाई मिलती है तीस रूपए और एक लहंगे की सिलाई बीस रूपए। सलवार-सूट अच्छा सिलती हैं वह लेकिन जब से नगर में बूटीक का जाल बिछा और रेडीमेड कपड़े मिलने लगे, सलवार-सूट सिलाने लोग कम ही आते हैं। बस, आठ-दस पुराने लोग हैं जो सकीना आपा से सलवार-सू्ूट सिलवाया करती हैं।

इतने कम पैसे में गृहस्थी चलाती हैं सकीना आपा और यू्ूसुफवा कमीना मोबाईल-जीन्स में पैसे फूंकता है----ये नहीं होता कि अपनी अम्मी का घर चलाने में हाथ बंटाए।

s

रात ईशा बाद सलीमा यूूसुफ के घर गई।
सकीना आपा सिलाई मशीन चला रही थीं।
सलीमा ने सकीना आपा को सलाम किया और पूछा--''यूसुफ कहां है आपा?''
सकीना आपा ने अंदर कमरे की तरफ इशारा किया।
सलीमा यूूसुफ के कमरे में जा पहुंची।

कमरा देख सलीमा चैंक गई---अरे ये क्या---कमरे का नज़ारा तो एकदम बदला-बदला सा है। पहले यूसुफ के कमरे की दीवारें पर चस्पां हुआ करते थे पाकिस्तानी-हिन्दुस्तानी क्रिकेटरों की तस्वीरें---शाहरूख-सलमान की तस्वीरें----और केटरीना कैफ के चेहरे के कई क्लोज़-अप्स.। आज उन दीवारों पर चिपकी हैं ओसामा बिन लादेन की तस्वीरें---मक्का-मदीना की तस्वीरें---और एक तरफ सिर्फ बाबरी-मस्जिद के मलबे की तस्वीर---जिस पर उर्दू में इबारत लिखी है--''यौमे शहादत बाबरी मस्जिद: छः दिसम्बर''।

सलीमा अवाक् रह गई।

यूसुफ में यह कैसा परिवर्तन---अच्छा मिस्त्री है, कमाता-खाता है, क्या हुआ कि घर में ध्यान नहीं देता लेकिन अपना खर्च तो निकाल ही लेता है। आजकल के नौजवानों के खर्च भी तो अजब हैं। ब्रांडेड कपड़े, मोबाईल, बाईक, परफ्यूम्स---सैलून में भी तो कितनी उधारी हो जाती है नौजवानों की। कभी दिल किया तो लम्बी जुुल्फें रख लीं---कभी दाढ़ी बढ़ा ली..कभी बाल कुतरवा कर छोटे करवा लिए---कभी क्लीन शेव्ड और कभी फ्रेंच-कट दाढ़ी---तो इस तरह सैलून के नाई आजकल नौजवानों से अच्छे पैसे बना ले रहे हैं। फिर इस सिरफिरे को अचानक ये क्या हो गया है। अचानक इतना धार्मिक और कट्टर विचारधारा का समर्थक---

सलीमा ने यूसुफ के बिछावन को गौर से देखा। ज़मीन पर चटाई में एक गुदड़ी पर चादर डली थी। वह यूसुफ का बिस्तर था। बगल में एक टीन की पेटी पर कई किताबें बिखरी पड़ी थीं।
यूसुफ लुंगी और टी-शर्ट पहने लेटा हुआ एक किताब पढ़ रहा था।

सलीमा ने किताब का टाईटल देखा--''ग़ाज़ी-ए-आज़म हज़रत ओसामा बिन

लादेन’’

यानी धर्मयोद्‌धा लादेन----सलीमा का माथा ठनका कि दुनिया में इस्लाम को लड़ाकू और बर्बर रूप में बदनाम करने वाला लादेन ग़ाज़ी या धर्मयोद्‌धा कैसे हो गया---?

अमरीका के वर्ल्ड-ट्रेड सेंटर को नेस्तनाबूद करने वाला इंसान ग़ाज़ी कैसे हो सकता है?

बामियान में आराम से खड़े शांति के दूत बुद्‌ध की मूर्ति को ध्वस्त करने वाला इंसान ग़ाज़ी कैसे हो सकता है?

सलीमा को मुसलमानों को ये कड़ा रूप पसंद नहीं। जब स्कूल में टीचर मुगलकाल पढ़ाते तो मूर्ति-भंजक, मंदिर-तोड़क मुसलमान शासकों का ऐसा घिनौना रूप प्रस्तुत करते कि हिन्दू बच्चे मुसलमान बच्चों से घृणा करने लगते। हिन्दू औरतों के जौहर का सारा दोष सलीमा को यूं महसूस होता कि कक्षा में उपस्थित मुसलमान बच्चों पर ही है। हो सकता है ऐसा न हो---लेकिन शिक्षकों की शिक्षण-पद्‌धति में प्रशिक्षण की कमी के कारण मुसलमान बच्चे सहमे रहते। खुदा-खुदा करके जब ये चैप्टर खत्म होते---तभी चैन की सांस ली जाती।

सलीमा ने महसूूूस किया कि खिलंदड़ा यूसुफ इस जहरीली मानसिकता का शिकार हो गया है। ऐसा कैसे हुआ----तभी उसे याद हो आया मौलाना सलीम। कहीं ये उस झारखण्डी मौलाना सलीमा की संगत का असर तो नहीं। अम्मी उस कमीने मौलाना के चक्कर में क्या घर से भागीं सलीमा को इस कारण तमाम मौलानाओं से चिढ़ हो गई। जाने क्यों उसे लगता कि ऐसे कमीनों का कत्ल करदे, जो धर्म-मज़हब की आड़ लेकर गरीब लोगों के विश्वास से खेलते हैं।

यूसुफ ने एक दिन बताया कि झारखण्ड से एक मौलाना साहब आए हैं जो मुसलमानों की बेहतरी के लिए एक मदरसा चलाते हैं। वे घूम-घूम कर अपनी विचारधारा का प्रचार करते हैं साथ ही जो खुशी से दिया जाए ले लेते हैं। इसी तरह उनका मदरसा और यतीम-खाना चल रहा है। कहते हैं कि मौलाना सलीम किसी ‘अहले-हदीस’ विचारधारा को मानता है। सलीमा ने तो देवबंदी, बरेलवी, सुन्नी-वहाबी, शिया, बोहरा, अहमदी जैसी विचारधाराओं के नाम सुने थे, लेकिन यूसुफ के साथ एक

दिन सलीमा के घर पधारे मौलाना सलीम के मुंह से उसने 'अहले-हदीस' सुना। सलीमा ने मौलाना को चाय पिलाई और एक सौ रूपए उनके मदरसा के लिए चंदे के रूप में दी।

मौलाना साहब और यूसुफ जब चले गए तो सुरैया ने बताया--"ये जो मौलाना है न इसकी निगाह में खोट है। कैसे घूर रहा था मुझे----!"

सलीमा ने उसे डांटा--"इसीलिए मैं तुझे कह रही थी कि ज्यादा सामने मत कूद---लेकिन ये यूसुफवा क्या आता है तू ज्यादा फुदकने लगती है---!"

सुरैया की आंखें फैलती जा रही थीं--"सलीमा---यूसुफ इस मौलाना के चक्कर में उलझता जा रहा है। कल मैंने कहा कि मौलाना का साथ छोड़ दे---तो यूसुफ नाराज़ हो गया।"

--"तेरे को क्या मतलब---यूसुफ जो चाहे करे कमीनी..तू अपना काम कर---।" सलीमा ने अपने सर पर दुपट्टा लपेटते हुए कहा था---अभी उसे दो बोरा गेहूं पीसना बचा था---कल्लू सेठ का आदमी रात आकर माल ले जाएगा।

सलीमा को कट्टरपंथ पसंद नहीं साथ ही उसे बहुसंख्यकों का अल्पसंख्यकों के प्रति तिरस्कार वाला व्यवहार भी पसंद नहीं है। इसी बात पर उसकी गंगाराम सर से बहस हो जाती। अंतरंग क्षणों से उबरकर जब वे रिलेक्स बैठे होते तो हिन्दू-मुसलमान विषय पर उलझ जाते। जब तक मिलन का खुमार चढ़ा रहता तब तक देह की आंच के आगे ख़ामोशी और अनुभूति की भाषा से काम चलता। जैसे ही आंच ठण्डाती----लिंग-भेद, जात-पात, रंग-नस्ल जैसी दुनियावी चिन्ताएं आ घेरतीं। सलीमा बदल जाती एक मुसलमान औरत में। जिसका दरजा इस वृहद भारतीय समाज में अछूत सा है। इसी तरह ज्वार थमता तो गंगाराम सर एक हिन्दू पुरूष के रूप में बदल जाते, जिन्हें धर्म की जय और अधर्म के नाश का मंत्र मिला हुआ है।

सलीमा ने कई बार गंगाराम सर, विश्वकर्मा साहब आदि से चर्चा के दौरान अपने विचार रखना चाहा है कि इतनी बड़ी दुनिया को चलाने के लिए कई धर्मों की ज़रूरत है---कई पूजा- पद्धतियों की ज़रूरत है----सिर्फ एक ही तरह के लोग हो जाएं तो संसार की विविधता खत्म हो जाएगी----ईश्वर के कई चेहरे-मोहरों की ज़रूरत है। इसलिए दुनिया के सारे धर्मों का सम्मान किया जाना चाहिए।

विश्वकर्मा साहब ज्यादा समझदार हैं सो वह कहते कि अरे भाई सारे धर्मों के सम्मान के साथ-साथ नास्तिकों को भी सम्मान करना चाहिए। ईश्वर को न मानना भी एक तरह का यकीन है। इसी तरह का पक्का यकीन आस्तिकों को भी होना चाहिए। इसी को तो आस्था कहते हैं।

सलीमा अपने अनुभवों से ये बात मानती है कि ईश्वरीय किताबें आम-आदमी को अच्छे-बुरे का सबक देने के लिए ज़रूरी हैं। पाप-पुण्य, सजा-ईनाम, स्वर्ग-नरक की अवधारणाएं इस विशाल मानव-समुदाय के संचालन के लिए बेहद ज़रूरी हैं। लेकिन कोई ये कहे कि इन धर्मों के अस्तित्व से, इन किताबों के वजूद से संसार में पाप-दुराचार कम हो जाएंगे---

ये धर्माचार्यों की भूल है। यदि ऐसा होता तो फिर नरक का निर्माण क्यों होता?

अपने जातीय-सामुदायिक खोल से बाहर निकल कर ही सलीमा ने जाना कि ये दुनिया अजीबो-गरीब है। विविधता और विभिन्नताओं का एक अद्‌भुत कोलाज़---!

विश्वकर्मा साहब बताते कि बताओ कैसी बनावट है दुनिया कि कहीं बर्फ ही बर्फ है---कहीं रेत ही रेत है---कहीं जंगल तो कहीं बीहड़---कहीं मैदान का विस्तार है तो कहीं पहाड़ ही पहाड़---। इसीलिए हर जगह अलग शारीरिक बुनावट के लोग मिलते हैं। जिसे नस्ल कहा जाता है। जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार ही उनके कपड़े-लत्ते डिज़ाइन होते हैं। हर जगह लोगों का रंग-रूप, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, आचार-व्यवहार अलग-अलग होंगे ही---फिर कैसे किसी एक मज़हब या धर्म से दुनिया की सारी आबादी को हांका जा सकता है।

विश्वकर्मा साहब हंसते---“चूतिया हैं का इत्ते सारे लोग----जो एक ही डण्डे से हांक दिये जाएंगेे!”

सलीमा ऐसे ही विविधता में एकता का पाठ पढ़ रही थी। वह समझने लगी थी कि अब कोई ये कहे कि भईया मूंड मुड़ाकर लम्बी सी चोटी रखने से ही पवित्र हिन्दू कहलाओगे या मूंछ मुड़ाकर दाढ़ी बढ़ा सिर पर टोपी खपकाकर पाकीज़ा मुसलमान----अजीब बात है ये---उसे हंसी आ जाती। ये ज़रूरी नहीं कि कपड़े पहन लेने से आदमी में आदमीयत आ जाती है और निर्धन-निर्वस्त्र लोग असभ्य या बर्बर होते हैं। तथाकथित सभ्य समाज अपनी अजीबो-गरीब कुण्ठित मानसिकता से उपजी

जीवनचर्या को आधुनिक, वैज्ञानिक जीवन-पद्धति निरूपित करता है। किसी कूूप-मण्डूप की तरह का जीवन जीने वाले खुद को विश्व-नागरिक कहते हैं तो कितना हास्यास्पद लगता है।

यूसुफ जैसे युवाओं की चेतना इसीलिए सीमित दायरे में संकुचित हो जाती है। ये नहीं जान पाते कि एक मिश्रित समाज में अपनी आइडेंटिटी अपनी विशिष्टता ज़ाहिर करते हुए जीवन- यापन करना कितना कठिन होता है। पक्का है कि बहुसंख्यक लोगों की आवाज़ में अल्पसंख्यकों की आवाज़ उतनी नहीं उभरेगी---लेकिन ज़रूरी नहीं कि सुर के कार्यक्रम में अनावश्यक शोर मचाकर भीड़ इकट्ठी की जाए या लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए धमाके किए जाएं----

सलीमा यूसुफ को देख रही थी।

यूसुफ के चेहरे पर तनाव के लक्षण थे।

उसने सलीमा को सलाम किया।

सलीमा ने सलाम का जवाब दिया और यूसुफ से किताब मांगी, जिसे वह पढ़ रहा था।

यूूसुफ ने किताब सलीमा की तरफ बढ़ाई और सलीमा को मोढ़े पर बैठने का इशारा किया---

मुुखपृष्ठ पर दो बंदूूकों के क्रास के साथ कुख्यात आतंकवादी लादेन की तस्वीर छपी थी।

सलीमा मोढ़े पर बैठ गई और किताब के पन्ने पलटने लगी।

यहूदियांे, इसाईयों, अमरीकियों के खिलाफ ज़हर उगलती भाषा में विश्व में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयास करती बातें लिखी थीं उस किताब में। लादेन को धर्मयोद्धा के रूप में सम्मानित, स्थापित करने का अभिप्राय पृष्ठ-दर-पृष्ठ दर्ज था।

पाठकों से अपील थी कि अखिल-विश्व में इस्लाम की स्थापना ही मुसलमान केे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। मज़हब के लिए मर मिटने वालों को शहीद का दर्जा अल्लाह देता है और शहीद के पाप-पुण्य का हिसाब-किताब नहीं होना है। शहीद सीधे स्वर्ग जाता है। स्वर्ग यानी जन्नत---जन्नत जहां हूरें हैं---और कभी न खत्म होने वाला आनंद है----

यूसुफ ने सलीमा से पूछा--''और भी कई किताबें हैं मेरे पास---देखेंगी---?''

सलीमा ने यू़ूसुफ के सिरहाने निगाह डाली---वहां और भी कई किताबें थीं---कुछ हिन्दी में कुछ उर्दू में।

सलीमा खामोशी से यू़ूसुफ का चेहरा देखती रही। क्या यूसुफ का चेहरा बदल गया है? चेहरा भर बदला है या यू़ूसुफ का वजू़ूद ही बदल गया है? कहां है वो खिलंदड़ा, लापरवाह, दंतनिपोर सा यूसुफ----वह जिस यूसुफ को देख रही थी, उस चेहरे पर अचानक काली बेतरतीब दाढ़ी उगने लगी----सिर पर एक पगड़ी सी बंध गई---अरे ये क्या यूसुफ का चेहरा तो जैसे ओसामा बिन लादेन के चेहरे में तब्दील हो गया था।

सलीमा घबरा गई और सुरैया से छीना मोबाईल सेट यूसुफ को वापस करने लगी--''कहां से लाता है इत्ते सारे मोबाईल कि बांटता फिरता है रे----इस मुए मोबाईल के कारण सुरैया आजकल पढ़ती है न लिखती है, बस सारा दिन इसी से चिपकी रहती है---!''

''तो का हुआ आपा----खेलने दो न उसे मोबाईल से---!'' यूसुफ मुस्कुराया।

''हां, अइसई खेलते रहेगी तो बरबाद न हो जाएगी---?''

''का आपा----आजकल के लड़के-लड़कियां तो मोबाईल के ज़रिए देश-दुनिया से जुड़ रहे हैं---और एक आप हैं कि बच्ची की खुशियां छीन रही हैं---!''

सलीमा उसकी बात पर ध्यान दिए बगैर फिर किताब के पन्ने पलटने लगी। किताब में अलकायदा और ओसामा बिन लादेन के बारे में बड़ी ज़ोरदार बातें लिखी थीं। इसाईयांे, यहूदियों और हिन्दुओं के खिलाफ़ ज़हर उगलते अध्याय थे। दाउद इबराहीम की बड़ाई थी उसमें।

बाबरी-मस्जिद की शहादत के किस्से थे---गुजरात के मुस्लिम नरसंहार के चर्चे थे---मुम्बई के दंगों पर एक-पक्षीय तस्वीर थी---सद्दाम हुसैन की शहादत थी---इज़राईल और अमरीका की साठ-गांठ के किस्से थे---भाषा ऐसी कि हर पढ़ने वाले का मन बदल जाए।

सलीमा घबरा गई--''आतंकवादी बनेगा क्या रे---?''

यूसुफ हंसने लगा--''इस ज़िन्दगी का मक़सद क्या है आपा----कमाना, खाना, बुड्ढा होकर मर जाना---यही न---आखिर एक दिन मरना ही है तो फिर क्यों न शहादत

का जाम चख कर मरा जाए---!''

सलीमा की आंखें फटी की फटी रह गईं---''कौन बहकाता है तुम्हें यूसुफ----हमारे इबराहीपुरा में तो अइसा नहीं था----तुम्हें क्या हो गया है---कहीं ये उस झारखण्डी मौलाना की कारस्तानी तो नहीं----अरे यूसुफ----तुम सकीना आपा के दुःख क्यों बढ़ा रहे हो। बिचारी बेवा औरत रात-दिन तुम्हारी तरबीयत के लिए परेशान रहती हैं और तुम---?''

यू्सुफ मुस्कुराता रहा। जैसे सलीमा की बातें महत्वहीन हों।

सलीमा ने गौर किया कि उसके चेहरे पर हल्की सी दाढ़ी उग आई है।

इसका मतलब फैशनेबुल यू्सुफ पक्का मियां बनता जा रहा है।

यू्सुफ अपने मोबाईल में कुछ खोज रहा था और फिर उसकी मोबाईल से एक गर्जदार तकरीर की आवाज़ आने लगी---

''खवातीनो हज़रात----अमेरिकी पिट्ठू सरकारें सारी दुनिया से इस्लाम का नामोनिशान मिटाने के लिए खुफिया तौर पर करोड़ों डालर फूंक रही हैं। यहूदी गुण्डे चुन-चुन कर इस्लाम को नेस्तनाबूद करने पर तुले हैं। ऐसे नापाक इरादों वाली सरकारों के खिलाफ़ हमारी जंग दुनिया के कोने-कोने से ताकयामत जारी रहेगी और एक दिन सारी दुनिया से काफिरों का सफाया करके इस्लामी हुकूमतें कायम की जाएंगी----''

एक नारा गूंजता है--''नाराए तकबीर---अल्लाहो अकबर---''

सलीमा घबरा जाती है और यू्सुफ से कहती है--''बंद कर भाई अपनी ये तकरीर----काहे दुनिया में जो अमन-चैन है उसे बरबाद करने पर तुले हो तुम लोग---इतनी बड़ी दुनिया में सिर्फ मुसलमान ही मुसलमान बसेंगे क्या---ऐसा ख़्वाब क्यों देखते हो यूसुफ---मिल-जुलकर रहना सीखो---मैं तो उतनी पढ़ी-लिखी नहीं लेकिन इतना ज़रूर जानती हूं कि हुजूर पैगम्बर साहब ने भी यहूदी और इसाई लोगों के साथ मिलजुलकर रहने की नसीहतें दी थीं----बड़े हाफिज्जी की तकरीर याद नहीं है जब उन्होंने कहा था कि कुरआन पाक में भी अल्ला-ताला कहता है---'लकुम दीनकुम वलेया दीन' यानी तुम्हें तुम्हारा दीन, उनको उनका दीन---फिर काहे का लफड़ा---अरे ज्यादा शौक चर्राया है तो पक्के नमाजी बन जाओ, तहज्जुद की नमाज पढ़ो----हलाल रोज़ी कमाओ और मां-बाप की खिदमत करो।''

यूूसुफ कुछ नहीं बोला।
खामोश बैठा रहा।
सलीमा उसे मोबाईल लौटा कर अपने घर वापस चली आई।
उसने सकीना आपा से भी इस बारे में कुछ नहीं बताया।

s

दूूसरे दिन दुपहर के वक्त सलीमा फिर सकीना आपा के घर गई।
सकीना आपा आराम कर रही थीं।
यूसुफ घर में नहीं था।

सलीमा ने यूूसुफ के बारे में पूछा तो सकीना आपा ने माथे पर हाथ धरे चिन्ता प्रकट की--''क्या करूं सलीमा बिटिया----कुछ समझ में नहीं आता कि क्या कहूं---बिन बाप का बेटा है---डरती हूं कि उल्टा-सीधा डांट दिया तो कहीं----?''

सलीमा ने उनके घुुटने पर हाथ रखा और खामोश रही।

सकीना आपा ने आसमानी सलवार-सूट पहन रखा था। सफेद दुपट्टे से सिर और बदन ढांप रखा था---सकीना आपा की यही पोशाक है---अक्सर वह इन्हीं कपड़ों में देखी जाती हैं---।
सकीना आपा अपने सफेद बालों पर मेंहदी लगाती हैं और उनका चेहरा जब वो जवान होंगी तो ज़रूर वहीदा रहमान मिलता होगा----

उनकी आंखें बोलती हुई सी हैं, जिन पर अब मोटे फ्रेम का चश्मा है।

सलीमा को ख़ामोश देख सकीना आपा की आंखों में आंसूू आ गए---दुपट्टे के कोर से आंसूू पोंछते उन्होंने बताया--''आजकल गुमसुम और तन्हाई-पसन्द हो गया है यूसुफ---वो जो गांधी चैक पर अण्डे-वाला यादव है न---काला-काला सा जिन्न जैसा यादव..वही आजकल रात-बिरात आता जाता है और तुम तो जानती हो कि झारखण्ड से जो मौलाना साहब आते हैं तो सलीम बड़ा खुश रहता है उन दिनों---मौलाना की बड़ी

खिदमत करता है---अपने कमरे में ठहराता है। पता क्यों मुझे मौलाना का आना नहीं अखरता लेकिन उस कमीने काफिर अण्डेवाले यादव का आना बहुत बुरा लगता है। तुम उस अण्डेवाले को जानती होगी---?'

सलीमा ने 'हां' में गर्दन हिलाई।

एक बार उस अण्डे वाले ने सुरैया को एक दर्जन अण्डे का दाम लेकर उतने ही पैसे में बारह की जगह पन्द्रह अण्डे दिए थे। यानी तीन अण्डे मुफ्त में।

सुरैया अपनी इस विजय से खुश थी कि उसके सौंदर्य और अदाओं से प्रभावित होकर अण्डे वाले ने तीन अण्डे ज्यादा दिए हैं।

सलीमा को जानकारी हुई तो उसने सुरैया को जमकर डांट लगाई थी कि ज्यादा अण्डे क्यों लिए..? ज़रूर इसमें अण्डे वाले यादव की कुछ चाल होगी।

सलीमा उसी वक्त चैक पर गई और एक्स्ट्रा अण्डों का दाम यादव के मुंह में दे मारा था।

सलीमा जानती है कि समाज लड़कियों पर किस तरह डोरे डालता है।

यदि लड़की गरीब हो, अनाथ हो या मजबूर हो तो फिर क्या कहने---

अण्डे वाला यादव के बारे में बताते हैं कि वह झारखण्ड में रांची का रहने वाला है और उसकी शख्सियत बड़ी संदिग्ध हुआ करती है।

अक्सर कई-कई दिन वह अण्डे का ठेला नहीं लगाता और कहीं गायब हो जाता है। पूछने पर कहता है कि देश चला गया था---अरे जब कमाने-खाने आए हो तो बार-बार देश जाने के लिए किराया-भाड़ा कहां से जुट पाता होगा---

ज़रूर उसका सम्बंध चोर-लुटेरों के गिरोह से होगा तभी तो उसका खर्चा-पानी चल रहा है।

सकीना आपा ने बताया--''वो यादव अण्डे-वाला रात-बिरात यूसुफ से मिलने आता है। उसी के ज़रिए यूसुफ को मोबाईल फोन के नए-नए डिब्बे मिलते हैं----अल्ला जाने का चक्कर है बिटिया---मेरा तो दिल घबराता रहता है आजकल---!''

सलीमा ने सकीना आपा के चेहरे पर भय के बादल मण्डराते देखे।

''रात में उसके कमरे से फोन पर बात करने की आवाजें आती हैं---मैं डांटती हूं तो फिर वह फुसुर फुसुर बतियाने लगता है----अल्ला जाने किससे बतियाता रहता

है--- मुझे तो उसके लक्छन ठीक नहीं दीखते बिटिया---तुम्हीं कुछ समझाओ न उसे----!''

सलीमा ने सकीना आपा को आश्वस्त किया कि यूूसुफ उसे मानता है और अपने तईं वह उसे समझाने का प्रयास करेगी।

लेकिन उसे कहां मौका मिल पाया----और अचानक वह हो गया जिसकी कल्पना भी किसी ने नहीं की थी। इबराहीमपुरा यानी मिनी-पाकिस्तान सुर्खियों में आ गया।

सजना है मुझे----

सुरैया जब पढ़ाई-लिखाई में कमज़ोर निकली तो सलीमा ने उसे सरदारिन परमजीत कौर की 'वीनस ब्यूटी-पाॅर्लर' में काम सीखने लगा दिया था।
नगर में 'वीनस ब्यूटी-पाॅर्लर' के बारे में लोग अच्छी राय नहीं रखते।
कई तरह की अफ़वाहें उड़ाई जाती हैं।

'वीनस ब्यूटी-पाॅर्लर' की मालकिन परमजीत कौर पहले पंजाबी-टोले में रहती थी। उसका आदमी खाड़ी देश में नौकरी करता है। वह साल में एक बार आता है, जो कुछ कमा कर लाता है बीवी के सुपुर्द कर देता है।
परमजीत कौर के बाल-बच्चे नहीं हैं।
वह एक लम्बे-तगड़े बदन की मालकिन है और दिखने में बला की खूबसूरत है।

परमजीत कौर की बूढ़ी सास उसी के साथ रहती है। सास अक्सर खाट पर पड़ी कराहती रहती थी। उस घर में उन दो औरतों के अलावा और कोेई नहीं रहता है।

परमजीत कौर अकेली बैठी क्या करती। अपनी ज़िन्दगी में व्यस्तता लाने के लिए उसने अमृतसर रहकर ब्यूटीशियन का कोर्स किया और इबराहीमपुरा वापस आकर उसने ब्यूटी-पार्लर खोल लिया। नाम रक्खा---'वीनस ब्यूटी पार्लर'।

श्वेत-श्याम टीवी विदा हुआ और जैसे ही रंगीन टीवी आया---लोग जानने लगे कि एंकरों, अभिनेत्रियों के कपड़ों का रंग कौन सा है---ज्वेलरी किस डिज़ाईन की है---मैचिंग के सभी आइटम धड़ाधड़ बिकने लगे।

दुल्हनों का श्रृंगार अब रिश्तेदार औरतें नहीं करतीं----ब्राइडल-मेकअप समाज की ज़रूरत बन गया।
यही कारण था ब्यूटी-पार्लर नगर की ज़रूरत बन गया।

परमजीत कौर आधुनिक विचार की मैच्योर महिला है---देखते-देखते उसने ब्यूटी पार्लर में कई कारीेगर लड़कियां रख लीं।
लड़कियांे के लिए बड़ा सुरक्षित कारोबार है ये।
सारी दुनिया की औरतों और लड़कियों में सुन्दर दिखने की चाह मौजूद रहती है।

ज़माना भी ये ऐसा आ गया है कि कोई बूढ़ा दिखना नहीं चाहता है।
मेकअप की मोटी परत में झुर्रियों की छिपाने की कला परमजीत कौर ने सीखी है।

इसीलिए नए-नए 'हेयर-स्टाईल', 'फेसियल', 'ब्लीचिंग', 'थे्रडिंग' 'वेक्सिंग' आदि के लिए मजबूरन औरतों को ब्यूटी-पार्लर की पनाह में आना ही पड़ता है। परमजीत कौर की वीनस-ब्यूटी पार्लर में अच्छी सुविधाएं मौजूद हैं।

अफवाहें भी उड़ा करतीं कि पंजाबी-टोला के इस ब्यूटी-पार्लर में रात-अधरात अजनबी मर्द आते हैं।

वैसे यह परमजीत कौर का निजी जीवन है, इसमें दखल देने का अधिकार किसी को नहीं लेकिन समाज के धुरंधर कर्णधारों को तो मसला चाहिए।

बात जब बहुत बढ़ी तब पंजाबियों ने आपस में बात करके परमजीत कौर को समझाना चाहा कि वह अपनी आदतें सुधारे या पंजाबी-टोले डेरा-डंडा समेट ले। परमजीत कौर के पास पैसे की कमी तो थी नहीं।

उसने ज़िद में आकर पंजाबी-टोले वाला मकान बेच दिया और बस्ती के दू्सरे छोर पर एक आलीशान मकान बना लिया।
अब वह किसी भी समाज के अगुवाओं की टोका-टाकी से आज़ाद थी।
यहां ंअभी नई बसाहट है। यहां के ज्यादातर लोग बाहरी हैं।

आसपास की कोयला-खदानों से रिटायर होने के बाद सस्ती ज़मीन खरीदकर मकान-दुकान बना बसते चले गए लोग। अब कब्रिस्तान के पास का भुतहा इलाका कितना गुलज़ार बन गया है।
एक समय इधर से गुज़रने में डर लगा करता था।
सुरैया ने बहुत जल्द काम सीख लिया।

कहते भी हैं कि ये मुसल्ले ससुरे हुनर का काम बड़ी जल्दी और बड़ी महारत से सीख जाते हैं। सुरैया अपनी सलाहियत से ब्यू्टी-पार्लर में पापुलर हो गई। उसका आर्थिक आधार सुदृढ़ हुआ। अपने छोटे-मोटे खर्चों के लिए अब उसे सलीमा के मांगना नहीं पड़ रहा था। रूकैया और सलीमा के लिए उसने कपड़े और पर्स खरीद दिए थे।

सुरैया के पास अब अच्छे कपड़े हैं---अच्छी जूते-चप्पल हैं---ब्राण्डेड नकली गहने हैं----टच-स्क्रीन वाला मोबाईल है। जिसमें इण्टरनेट की सुविधा है। रूकैया भी मोबाईल

पर नेट चलाना सीख गई है। रूकैया ने सुरैया के लिए चोटी बांधने की कला के कई डिज़ाइन डाउनलोड करके ‘सेव’ कर दिए। ये कला तो परमजीत कौर को भी नहीं आती थी। लोग सुरैया से डिज़ाइनदार चोटी करवाने भी ब्यूटी-पार्लर आने लगे। सुरैया के कारण ‘वीनस ब्यूटी पार्लर’ का काफी नाम हो गया।

अपने पैरों पर खड़ी सुरैया आजकल स्टाईल मारने लगी है---ऐसा घरों में कैद मुहल्ले की अविवाहित लड़कियां दबी जुबान कहा करतीं---सुरैया कहां सुनती ऐसे दकियानूूूस विचारों पर ध्यान देती----.

S

सुरैया जब देखो तब ब्यूटी-पार्लर की मालकिन पंजाबन परमजीत कौर की तारीफ़ के पुल बांधे रहती। सुरैया अपनी मालकिन के चुम्बकीय व्यक्तित्व से बेहद प्रभावित थी।

सुरैया उसी ब्यूटी-पार्लर में काम सीखती और अपना जेब-खर्च निकाल लेती थी।

परमजीत कौर की पारखी नज़र सुरैया जैसी ज़रूरतमंद लड़कियों की मजबूरियां बड़ी आसानी से जान जाती हैं।

कहते भी हैं कि मुस्लिम लड़कियांे में ग़ज़ब का हुस्न होता है।

सुरैया वीनस ब्यूटी-पार्लर की जान थी।

अपने काम में माहिर। प्लकिंग, थे्रडिंग इतनी सफाई से करती कि हर ग्राहक उसी से अपनी भौं नुचवाना चाहतीं।

फेसियल करते समय उसके हाथों में जादुई कोमलता आ जाती और उसकी चहेती ग्राहक औरतें तो फेसियल कराते-कराते नींद के आगोश में चली जातीं।

सुरैया दस बजे दिन में पार्लर आती और एक बजे खाना खाने चली जाती। फिर चार बजे के आसपास आती तो फिर रात आठ बजे तक पार्लर में रहती। शादी-ब्याह या फिर तीज-त्योहार का मौसम हो तो सुरैया को परमजीत कौर अपने घर में ही रोक

लेती।

सुरैया पर तो जैसे परमजीत कौर ने जादू सा कर दिया था।

सलीमा उसे मना करती कि पंजाबन के घर रात मंे न रूका कर। वह ठीक औरत नहीं है। लेकिन सुरैया के साथ तो कभी भी कुछ भी ग़लत नहीं हुआ था। फिर वह कैसे सलीमा की बात पर यक़ीन कर लेती।

और सलीमा कौन सही है?

सारा नगर तो उसके बारे में तरह-तरह की बातें बनाता रहता है।

सलीमा का नाम तो नगर के कई ऐरे-गैरे लोगों से जुड़ा है कि बताते शर्म आ जाए।

आटा-चक्की के लोन वाली बात तो जैसे सभी जानते हैं कि सलीमा ने लोन पाने के लिए कैसे हथकण्डे अपनाए थे। वही सलीमा जब सुरैया को नैतिकता का पाठ पढ़ाती तो सुरैया को गुस्सा आ जाता।

सुरैया जानने लगी थी कि देह की उम्र निश्चित है, एक उम्र के बाद देह के ग्राहक बिदक जाते हैं। सुरैया धीरे-धीरे परमजीत कौर के मोहजाल में फंसती चली गई थी।

सुरैया ऐसी राह पर चल निकली थी जिसके आगे राह नहीं होती----

आतंक के तार---

इब्राहीमपुरा में एकदिन बड़ी खलबली मची।
मुहल्ले को पुलिस ने घेर लिया।
इब्राहीमपुरा एक फौजी छावनी में बदल गया।
पुलिसिया बूटों की ठक-ठक से इब्राहीमपुरा की गलियां गूंजने लगीं।
सकीना आपा के मकान को पुलिस ने घेर लिया है---
सकीना आपा के मकान की जर्जर कच्ची दीवारें और खपरैल, पुलिसिया बूूटों की धमक से
थरथरा उठीं।
सकीना आपा के आंगन से सटी है हाजी जब्बार की कोठी।
हाजी साहब के छत पर मुस्तैदी से पुलिस वाले डट गए।

लोग समझें इससे पूर्व कुछ पुलिस वाले यूसुफ को कव्हर करते हुए बाहर निकले। यूसुफ के साथ अण्डे वाला करिया यादव भी था। उन सबके पीछे थी रोती बिलखती बेवा सकीना आपा----

--“का किया है मेरे बचवा ने---अनाथ बच्चा है साहेब..कहां लिए जा रहे हैं यूूूूसुफवा को..!”
पुलिस वालों ने यूूसुफ को बंद गाड़ी में बिठाया और चले गए।
तत्काल घेराबंदी करने आए पुलिसवाले भी चले गए।
सकीना आपा का रो-रो के बुरा हाल----

इब्राहीमपुरा की इस हलचल से नगर के पत्रकार, नेता और तमाशबीन सकीना आपा के मकान के इर्द-गिर्द जमा हो गए।

ऐसा नगर है इबराहीमपुरा कि यहां आजतक सट्टा हुआ, जुआ हुआ, देह-व्यापार हुआ, गांजा-दारू हुआ, जूतम-पैजार हुआ, लट्ठ चले, बलात्कार हुए---लेकिन आतंकवाद से सम्बंधित कोई खबर कभी नहीं बनी।

पत्रकार हैरान कि उनके जैसे कूप-मण्डूूक बुद्धिजीवियों को कैसे भनक नहीं

लगी कि नगर में इण्डियन मुजाहिदीन का कनेक्शन है।ः

ये अण्डे बेचने वाला करिया गरीब सा आदमी वास्तव में आतंकवादियों के नेटवर्क का एक अहम हिस्सा है। इतने बड़े नेटवर्क को धरने के लिए सही कोशिश की शुरूआत इबराहीमपुरा से हुई---पत्रकार इस बात से प्रसन्न हैं। इस जबरदस्त स्कूप से इबराहीमपुरा में अब ओबी वेन और बड़े पत्रकार अवश्य आएंगे---ऐसी उम्मीद थी।

सलीमा ने सुना तब वह भी भागी-भागी सकीना आपा के घर जा पहुंची।

देखा कि सकीना आपा को न दुपट्टे का होश है न कपड़े का----बस दहाड़े मार-मार रोए जा रही हैं। तमाशबीन सकीना आपा को घेरे खड़े हैं।

सलीमा आगे बढ़ी और सकीना आपा के कपड़े ठीक किए।

सलीमा ने सुना कि हाजी जब्बार साहब भीड़ को समझा रहे हैं--‘‘इस बेवा का बेटा यूसुफ एक दहशतगर्द है----पुलिस का कहना है कि इसका सम्बंध इण्डियन मुजाहिदीन से है---अल्लाह जाने सच क्या है---!’’

गफूर चच्चा काहे चुप रहते----उन्होंने कहा--‘‘बताइये---कितनी शरम की बात है कि इबराहीमपुरा में ऐसी बात---! यूसुफवा कैसे आतंकवादी बन गया---अल्ला ताला रहम करे---!’’

पत्रकार लोग मजमे की फोटो खींच रहे हैं।

लोगों से यूसुफ के बारे में जानना चाह रहे हैं।

कोई क्या बताता? आजकल युवाओं की दुनिया ही अलग है। उनकी चिन्ताएं अलग हैं। उनके दुख-दर्द अलग हैं। उनके ख्वाब अलग हैं। उनके सोचने और संसार को देखने का नज़रिया अलग है। ऐसे में कोई क्या बताए?

याद न जाए, बीते दिनों की---

याद है सलीमा को वह दिन, जब घर उजड़ने और बर्बाद होने की कगार पर था। अचानक एक दिन अम्मी बाल-बच्चों से भरा-पूरा घर छोड़ कर चली गई थीं। अब्बू को ऐसा सदमा लगा कि वह काम-धाम छोड़कर दारू के ठेके पर जा बैठे थे। सारी जमा पूंजी दारू-भट्‌टी पर उड़ाने की जैसे क़सम खाई थी उन्होंने।
अपने असहाय बाल-बच्चों से उन्हें कोई मतलब न था।
ज़िन्दगी का हिसाब-किताब गड़बड़ा गया था----

ऐसे कठिन समय में झूठी हमदर्दी जताने वाले लोगों का घर में तांता लगा रहता था। जाने कहां-कहां से लोग आ-आकर सलीमा और अब्बू का दिमाग खाते। झूठी तसल्ली बंधाते। सब्र करने को कहते।

बातों-बातों में लोगों ने अम्मी की बेवफ़ाई के बारे में सलीमा के सामने कई रहस्यों पर से परदा हटाना चाहा था। सलीमा तब बच्ची ही तो थी। तेरह-चैदह साल की उम्र कोई ज़िम्मेदारी उठाने की उम्र होती है। ये तो अच्छा है कि सलीमा लड़की थी। लड़कियां बचपन से ही समझदार होती हैं। जबकि इस कच्ची उम्र में तो लड़के रात में बिस्तर पर ही मूत डालते हैं।

सलीमा लोगों की बातों पर कान न धरती थी।

वह जानती थी कि उसकी अम्मी एक बेहद ख़ूबसूरत औरत थी और उसकी इस घर में बच्चे जनने, खाना बनाने, घर साफ करने और घर की चैकीदारी करने के अलावा कोई काम न था। उनकी कोई अपनी ज़िन्दगी न थी। अब्बू दिन-रात हाजीजी की चक्की में खटते या फिर दारू-बीड़ी में गर्क हो जाया करते थे।

उनके पास अम्मी की खुशियों के लिए एकदम समय न था।

जद्‌दन खाला जो कि मुहल्ले में 'बीबीसी' के नाम से प्रसिद्‌ध थी, ने तो सलीमा का दिमाग ही खराब कर डाला था।

सलीमा ने तब उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई थी।

उसने साफ़-साफ़ कह दिया था-''बड़ी बनती है आप दूसरे के छेद देखने वाली! आपकी बेटी जमीला काहे ससुराल नहीं जाती। मिंया से नहीं बनती या फिर जब्बार

कसाई के लौंडे के साथ ही उसका मन लगता है। सारा नगर जानता है कि आपकी साहबजादी जब्बार कसाई के लौंडे के साथ सरेआम सिनेमा देखने जाती है। वह लौंडा दिन-रात आपके घर में घुसा क्या करता रहता है? बताईए? बड़ी आई हैं मेरी अम्मी में ग़लतियां ढूंढने---!''

सही भी तो था।

जमीला अम्मी से मिलने आती थी तो सलीमा उसे फूटी आंख न सुहाती थी। फैले हुए होंठ, मिचमिची आंखें, उठे हुई नाक लेकिन भारी छातियां और खूब भारी कूल्हे। जमीला साड़ी-ब्लाउज़ पहना करती थी। ब्लाउज़ वह ऐसे पहनती कि उसकी छातियां बाहर छलकने को उतावली नज़र आतीं। साड़ी कूल्हे से कसकर बांधती कि जब वह चलती तो लोग उसकी चाल को देखते रह जाते।

जमीला को मालूम था कि यदि वह खूबसूरत होती तो जाने क़यामत ही बरपा कर डालती।

जमीला आती तो अम्मी उसके साथ खूब हंसी-मज़ाक करतीं।

कभी-कभी अम्मी जमीला के साथ सिनेमा देखने भी जाती थीं।

जमीला बांझ थी और इसी लिए कोख की कोठरी के डर से आज़ाद थी।

सलीमा की खरी-खोटी बातें सुनकर जद्दन खाला जो उल्टे क़दम वापस हुईं तो फिर दुबारा सलीमा के दरवाज़े पर नहीं फटकीं।

सलीमा ने इसी तरह लोगों का मुंह बंद किया था।

सलीमा अकेले में अपनी को याद करके खूब रोती थी।

अम्मी को उसने माफ़ कर दिया था और इसके अलावा वह कर ही क्या सकती थी?

बस, उसने अपनी बहनों को पता ही न चलने दिया कि उनकी मां उन्हें छोड़ कर जा चुकी हैं, कि बच्चों की परवरिश के लिए मां का होना निहायत ज़रूरी होता है, कि दुनिया वाले बातें बनाते हैं और अक्सर दुखती रग को छेड़ कर किसी को तिलमिलाता देख आनंदित होते हैं।

सलीमा डटकर खड़ी हुई---

वैसे भी कहा गया है कि नींद न जाने टूटी खाट और भूख न जाने जूठा भात---- आपद्-धर्म में हराम-हलाल, हक़-नाहक़, भला-बुरा की तमीज़ इंसान खो बैठता है।

सलीमा ने खुद को बिगाड़ा लेकिन अपने परिवार को टूटने-बिखरने से बचा लिया था।

जिससे डरते थे वही बात हो गई!

सलमा को हमेशा यही लगता कि उसकी जुबान काली है।

उसकी मजर्ी जो भी चाहे सोच ले, लेकिन यदि यही सोची हुई बात यदि उसकी जुबान पर आ जाए तो वह बात सच होकर रहती है। इसीलिए सुरैया और रूकैया उसकी ऐसी किसी घोषणा पर तत्काल आपत्ति दर्ज़ कराती हैं कि आपी, ऐसा न बोलो, तुम्हारा कहा सच हो जाता है!

सलमा ने एक बार मज़ाक में सुरैया के मन में ब्यूटी-पार्लर की मालकिन परमजीत कौर के प्रति अगाध-श्रद्धा देखकर कह दिया था कि यदि सुरैया की यही दशा रही तो देखना किसी दिन सुरैया घर-बार भूलकर सिर्फ ब्यूटी-पार्लर की होकर रह जाएगी।

और हुआ भी वैसा ही जैसा सलीमा के मन में आशंका थी!

एक दिन सुरैया काम पर ब्यूटी-पार्लर जो गई तो घर लौटकर न आई।

सलमा और रूकैया उसका इंतज़ार करते रह गए।

वैसे कभी-कभी सुरैया ब्यूटी-पार्लर से देर रात लौटती।

ऐसा तभी होता जब शादी-ब्याह या फिर तीज-त्योहार का मौसम होता।

हां, ब्यूटी-पार्लर से कोई न कोई आकर ये ख़बर ज़रूर कर जाता कि सुरैया बेबी आज देर से घर लौटेगी।

अब्बू अपने कमरे में खा-पीकर आराम कर रहे थे। उन्हें दुनिया की क्या चिंता..लड़कियां किस हाल में हैं कि मर-बिला गई..उन्हें क्या खबर---उन्हें सिर्फ अपनी खबर रहती है कि वह अभी जिन्दा हैं और इस दुनिया के रंगमंच में अब उनके लिए कोई भूमिका शेष नहीं है।

जब रात के नौ बज गए तो सलीमा से रहा न गया।

सुरैया जब काम कर रहीं होती तो उसका मोबाईल स्विच-आॅफ रहता।

परमजीत कौर की सख्त हिदायत थी कि ग्राहक आ जाएं तो मोबाईल बंद कर दिया जाए। ऐसा नहीं कि साइलेंस या वाइब्रेट मोड पर मोबाइल रखा जाए। मालकिन की सोच थी कि यदि फोन से सिग्नल मिला कि कोई काॅल है या मेसेज है तो बेशक व्यक्ति का ध्यान भंग होगा। जिससे हो सकता है ग्रंाहकों को कोई तकलीफ हो जाए---!''

सलीमा ने वीनस-ब्यूटी पार्लर की मालकिन परमजीत कौर से सीधे बात की।

परमजीत कौर ने सूरैया के बारे में अनभिज्ञता प्रकट करते हुए जानकारी दी कि सुरैया तो अपने टाईम पर पार्लर से चल दी थी। आज तो काम भी ज्यादा नहीं था।

सलीमा ने बताया कि सुरैया घर नहीं पहुंची है!

परमजीत कौर की आवाज़ में चिंता की झलक मिली-''क्या वह घर नहीं पहुंची?''

सलीमा कुछ कहती इससे पहले फोन 'डिस्कनेक्ट' हो गया।

सलीमा के होश उड़ गए।

इसका मतलब परमजीत कौर मैम के पास कुछ जानकारी है, वरना वह ऐसे फोन नहीं काटती। वैसे भी उसके बारे में मशहूर था कि रात वह कभी अकेले नहीं गुज़ारती है और उसके पास ढेर सारे मर्दों की सूची है। उनमें व्यापारी, अधिकारी, बाबू और काॅलेज के लड़के भी शामिल हैं। हां, उसके पास अच्छे-अच्छे कारीगर हो गए हैं और कई तरह की मेक-अप करने वाली मशीनें उसने लगवाई हैं।

इसी लिए नगर की महिलाओं में वीनस-ब्यूटी पार्लर का बड़ा 'क्रेज़' है।

कितने जतन से सलीमा ने जीवन की गाड़ी को एक ठीक-ठाक सड़क पर गति देने का प्रयास किया था। अभी वह चैन का सांस लेने भी न पाई थी कि सुरैया ने एक नया बवाल खड़ा कर दिया।

इधर कई दिनों से सलीमा की छठी इंद्री कह रही थी कि देख सलीमा, ध्यान दे, तेरी सुरैया के रंग-ढंग ठीक नज़र नहीं आ रहे हैं। कहीं ये लड़की हाथ से फिसल न जाए। एक दिन सलीमा ने सुरैया के बिस्तर में गद्दे के नीचे एक चिकने कागज़ वाली पत्रिका देखी थी। वह एक विदेशी पत्रिका थी, जिसमें विदेशी माॅडलों की नग्न तस्वीरें और उत्तेजक मुद्राएं रहती हैं।

ऐसा नहीं है कि सलीमा ऐसी किताबों से अनभिज्ञ हो। उसने ऐसी कई किताबें

बैंक-मैनेजर विश्वकर्मा साहब के घर देखी थीं। विश्वकर्मा साहब ने उसे ब्लू-फिल्में भी दिखाई थीं।

लेकिन सुरैया के पास ऐसी किताब देख सलीमा का दिमाग सन्न हो गया था। उसके माथे पर पसीना चुहचुहा आया था। हड़बड़ी में उसने किताब फिर से बिस्तर के नीचे दबा दी थी।

सलमा ने सुरैया से कुछ नहीं कहा था।

वह जानती थी कि किशोरावस्था और जवानी के संघिस्थल की उम्र हर एक के मन में स्वाभाविक रूप से प्रकृति के गोपन-रहस्य जानने की जिज्ञासा होती है। तब ऐसे युवक-युवतियां गुप-चुप तरीके से उस ज्ञान का मर्म पाने के लिए बेहद लालायित रहते हंै। ऐसे में यदि सुरैया सिर्फ किताब के ज़रिए ये जानकारी प्राप्त कर रही है तो उसमें कोई नुकसान नहीं। हां, प्रश्न ये पैदा होता है कि ये किताबें उसे मिल कहां से रही हैं? कहीं हड़बड़ी में सुरैया खुद को किसी मुसीबत में न डाल दे? क्या करें, इस घर में कोई फ़िक्र करने वाला नहीं कि इन जवान होते बच्चों का क्या होगा? सलीमा के साथ की लड़कियां तो अब बाल-बच्चेदार हो चुकी हैं। मुहल्ले में सुरैया की अधिकांश सहेलियांे की शादी हो गई है, जिनकी नहीं हुई है वे देखा-दिखाई की प्रक्रिया से गुज़र रही हैं। सुरैया का क्या होगा? फिर रूकैया भी तो दना-दन् बड़ी होती जा रही है।

आगे-पीछे महीने से होती हैं तीनों बहिनें!

हर महीने कहां से आएं सूती कपड़े जिन्हें वे इस्तेमाल करें। इसीलिए सलीमा ने सख़्त हिदायतें दे रखी थीं कि गंदे कपड़े अच्छी तरह धोकर सुखा लिए जाएं और फिर उन्हें सम्भालकर रख दिया जाए, ताकि अगले महीने काम आ सकें। सुरैया तो उसकी बात मान लेती है लेकिन रूकैया गंदे कपड़े धोती नहीं। वह उन्हें गुसलखाने के पीछे फेंक देती है। सलीमा इसी बात से रूकैया से नाराज़ रहती है। रहे भी क्यों न! कहां से जुगाड़ करे सलीमा?

सुरैया जब से ब्यूटी-पार्लर जाकर कमाने लगी है, उन ख़ास दिनों के लिए उसके पर्स में ‘नेपकिन्स’ रहती हैं। एक बार रूकैया ने नेपकिन देख कर पूछा था कि आपा, ये सामान भी मेक-अप करने में लगता है?

सुरैया और सलीमा तब कितना हंसी थीं।

वाकई बुद्धू है रूकैया, जबकि अब उसे भी 'ब्रा' की ज़रूरत है।
पता नहीं अब्बू के कान में जुंई क्यों नहीं रेंगती?
जुंईं क्या अब तो अब्बू के कान में हाथी भी घुसने का बलात् प्रयत्न करे तो अब्बू को फर्क न पड़े।
ये बात तय है कि अब सुरैया का विवाह करना ज़रूरी हो गया है। लेकिन अब्बू की घर के प्रति
जिस घर की मालकिन बच्चों को छोड़कर भाग चुकी हो, जिस घर की बड़ी बेटी अपने जिस्म के ऐवज परिवार का पेट पाल रही हो, जिस घर का मुखिया दारू पी-पीकर संज्ञाहीन हो चुका हो, ऐसे घर की लड़कियां डोली बैठने के लिए क्यों तरसती न रह जाएं? यही तो बतकही करते हैं मुहल्ले के लोग!
रमज़ान के दिनों में जब चंदा मांगने वाले मौलानाओं की बाढ़ सी आई रहती है, तब एक बुजुर्ग से दीखते मौलाना से सलीमा ने कहा था कि उसकी बहनों के लिए अच्छा सा रिश्ता तजवीज़ करें। बुजुर्ग ने इक्यावन रूपए की रसीद काटते हुए भरोसा दिया था-"इंशाअल्लाह, जल्द कोई न कोई रास्ता अल्लाह-पाक निकालेंगे!"
सलीमा के मन में उम्मीद बंधी थी।
फिर झारखण्ड की किसी मस्जिद के लिए चंदा लेने आए एक नौजवान मौलाना ने जब रूकैया को देख कर लार सी टपकाई थी, तब सलीमा ने रूकैया से कहा था कि इन मौलानाओं के सामने वह निकला न करे। बड़े छिनार होते हैं ये।
यदि निकलना ज़रूरी हो तो सिर और सीना ओढ़नी से ढांक पर बाहर निकले।
कितनी बार उससे कहा कि ढंग के कपड़े पहना करे। किसी के सामने कैसे खड़े हुआ करे, कैसे बैठा करे। रूकैया एकदम अल्हड़-गंवार सी रहती है। बैठेगी तो टांगें फैलाकर---
सुरैया और रूकैया की हरकतें देख सलीमा माथा पीट लेती है।
लड़कियों के स्कूल में सलीमा ने अपनी दोनों बहनों को पढ़ाया ताकि स्कूल में तो वे सुरक्षित रह सकें।
उस स्कूल में चपरासी और क्लर्कों के अलावा तमाम स्टाॅफ औरतें हैं।
काश, उसकी मां होतीं और उसके लिए भी इतनी ही चिन्ता की होतीं तो आज सलीमा

की ज़िन्दगी कितनी खुशगवार होती?

बिन मां की बच्ची सलीमा ने कम उम्र में ही जान लिया था कि खुदा ने औरतों को एक कुदरती सेंसर दिया हुआ है, जिसके ज़रिए वे अनहोनी को भांप लिया करती हैं। औरतें आसानी से अनुमान लगा लेती हैं कि कब परिस्थितियां प्रतिकूल होने वाली हैं। खुदा ने इतनी अतिरिक्त क्षमता औरतों को क्यों दी है? इसलिए तो नहीं कि औरतें मां बनने जैसा कठिन काम कर सृष्टि चलाए रखने के लिए खुदा की मदद किया करती हैं।

सलीमा अपनी बहनों को जीवन की बारीकियां इसी तरह समझाया करती है, लेकिन फिर भी सुरैया ग़लती करती जा रही है---

लड़कियां चाहें तो अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के हथियार से मर्दों की लिजलिजी दुनिया में खुद को बचाए रख सकती हैं लेकिन कितने दिन?

शायद ठीक ही कहा गया है कि बकरे की अम्मा कब तक ख़ैर मनाएगी----

सुरैया से बिना कुछ कहे-सुने सलीमा ने उसके गद्दे के नीचे से किताब निकाल कर जला दी थी।

सुरैया जान गई होगी, क्योंकि उसके बाद वैसी किताब फिर उस घर में नहीं आई, लेकिन सुरैया खुद जाने कहां चली गई?

ऐसे ही एक समय सुरैया ने अजमेर में उसे परेशान किया था।

मन कुन्तो मौला----.

एक-टक घूरते, लार टपकाते, घात लगाकर झपट पड़ते मर्दों की दुनिया में खुद को सम्भाल रखने का पाठ सलीमा ने अपनी दोनों बहिनों सुरैया और रूकैया को जितना रटाया-पढ़ाया सब बेकार हो गया।

जब वे लोग अजमेर-शरीफ़ गए, तब एक ख़ादिम ने सुरैया पर डोरे डाले और सुरैया उस बजरबट्टू पर लट्टू हो गई थी।

यह सलीमा के ज़िन्दगी की पहली यात्रा थी---

इससे पहले वह इतनी दूर सफ़र पर नहीं गई थी।

आस-पास चालीस-पचास किलोमीटर दूरी की यात्राएं कोई माइने नहीं रखतीं।

एक बार ताजिया देखने वह उमरिया गई थी।

सकीना आपा अपने साथ उसे लेकर गई थीं।

दो दिन में आना-जाना और घूमना हो गया था।

हां, सुरैया ज़रूर अपनी मालकिन परमजीत कौर के साथ बिलासपुर और जबलपुर का सफर तय कर चुकी थी।

सलीमा के गरीब-नवाज़ की दरगाह की ज़ियारत का निर्णय सुन घर में उमंग-उत्साह की लहर दौड़ पड़ी थी।

हिन्दुस्तान के गरीब मुसलमान अजमेेर-यात्रा को हज के बराबर का दरजा देते हैं। वैसे ही गरीब परिवेश से आए मौलाना-हाफिज भी समझा देते हैं कि मियां, सात बार ख्वाजा गरीब-नवाज की जियारत एक हज के बराबर होती है।

जबकि हज इस्लाम के पांच फरायज़ में से एक है। इस्लाम का बुनियादी स्तम्भ है हज---

क्या किया जा सकता है इन गरीब मौलानाओं का..

है किसी मौलाना में दम जो गांव-कस्बे की मस्जिद में नमाज़ पढ़ाकर हज-यात्रा के लिए पैसे जोड़ पाए---?

हैै किसी गांव-कस्बे के गरीब मुसलमान की औकात जो दिहाड़ी कमाकर हज-यात्रा का सपना भी देख सकेे?

बहुत मुश्किल है हज-यात्रा और इसीलिए ख्वाजा गरीब नवाज की जियारत करने जाने वाले को आम लोग हज यात्रा जैसी तरजीह देते हैं क्योंकि इन गरीबों के लिए इबराहीमपुरा से अजमेर की यात्रा भी धरती के एक छोर से दूसरे छोर की यात्रा बराबर हैै।

सलीमा अपनी बहनों के साथ पहली बार अजमेर जा रही थी। उन सभी के मन में उल्लास ता था लेकिन एक आशंका भी थी कि उस अनजान जगह में तीन-चार दिन कैसे गुजारे जाएंगे? अल्ला जाने क्या होगा?

बस, एक यही जज़्बा था कि--“वही अजमेेर जाते हंै जिसे ख्वाज़ा बुलाते हैं---”

अब ख़्वाज़ा गरीब नवाज ने बुलाया है तो वही पार लगाएंगे।

और यही पार लगाने वाले ख़्वाज़ा के प्रति आस्था, खांटी मूलतत्ववादियों को नागवार गुज़रती है और वे ऐसी भावना को शिर्क कहने लगते हैं---

जबकि उन लोगों ने कभी नहीं समझाने का प्रयास किया कि शिर्क और ईमान के बीच कितना कम फासला है---

सूफी पीर-फकीरों पर आस्था रखने वाले मुसलमान शिर्क और ईमान के पचड़े में नहीं फंसते।

वे जानते हैं कि प्रतिदिन हजारों लोग जो इन दरगाहों पर आते हैं क्या सभी सिरफिरे हैं? एक से बढ़कर एक खानदान के पढ़े-लिखे, धनाढ्य लोग से लेकर चीथड़ा लपेटे खाकनशीन लोग---सभी ख़्वाज़ा की दरगाह में एक से दीखते हैं---अपनी उम्मीदों, आरजूओं, ख्वाबों को पूरा करने के लिए रोते-गिड़गिड़ाते लोेग क्या इस्लाम के जानकार नहीं हैैं, फिर ये सब क्यों श्रद्धा से नत् हैं ख्वाज़ा की हस्ती के आगे..? मुसलमान तो मुसलमान, हिन्दू और सिक्ख भी ख्वाज़ा के दरगाह में प्रतिदिन हजारों की संख्या में आते हैं----कैसा चमत्कार है ये---मूलतत्ववादी बताएं---क्या ये सारे लोग सिरफिरे और जाहिल हैं---

ऐसे ही कई प्रश्न हैं जिनका जवाब खोजना मुश्किल होता है और फ़िज़ा में गूंजने लगता हैै

--“मन कुुन्तो मौला----फ़ हाज़ा अली उन मौला!”

इस ‘मन कुन्तोे मौला---’ केे ऐेेतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही शिया मज़हब और

मकबरे-मज़ार-ख़ानकाहों का राज़ छुपा है। हज़रत अली जो कि पैगम्बर रसूल के दामाद थे, उनके बारे में हज़रत मुहम्मद रसूलल्लाह ने स्वयं फ़रमाया था जब वह अपने आखिरी हज से लौटते वक्त मैदाने-गदीर में अपने जानशीन का ऐलान इन अल्फ़ाज़ में कर दिया था--“मन कुन्तो मौला----फ़ हाज़ा अली उन मौला!”
यानी मैं जिसका मौला हूं, अली उसके मौला हैं यानी सरपरस्त, रहबर और हाकिम हैं। हज़रत अली और रसूल की बेटी फातिमा के वसीले से पीरों की तस्दीक मिलती है। इसी वसीले से हज़रत मुईनुद्दीन चिश्ती भी हैं----.
इसीलिए तमाम मज़ारात में अक्सर एक धुन गूंजती रहती है--“मन कुन्तो मौला---”
इस्लाम के आखिरी पैगम्बर के बाद चार खलीफा हुए। हज़रत अली चैथे खलीफा हैं लेकिन शिया लोग पैगम्बर के बाद इमामत का खिताब हज़रत अली को देते हैं। फिर पैगम्बर के नवासे शहीदाने कर्बला हज़रत इमाम हसन और हुसैन को।
कव्वाल गा रहे थे---

“हुई कब असी शादी, हज़रत ए आदम से ता’ ईसा
के दुल्हन फ़ातिमा ज़ोहर, अली अल-मुरतज़ा दूल्हा
जो वो बिन्ते-पयम्बर थी, तो ये मोलुद ए क’आब थे
नबी के घर की थी बेटी, खुदा के घर का था बेटा
अली मौला, मौला, अली मौला
मन कुन्तो मौला---!”.

इबराहीमपुरा में संयोग से मुसलमानों की कई वेरायटी हैं। सुन्नी मुसलमानों के दो गुट हैं। एक देवबंदी गुट है दूसरा बरेलवी गुट। बरेलवी लोग अपने को खांटी सुन्नी जमात बताते हैं और देवबंदियों को वहाबी कहते हैं। देवबंदी लोग नगर में पहले-पहल आए थे सो उनकी तादाद ज्यादा है, लेकिन बरेलवियों के आ जाने से देवबंदी जमात में वृद्धि होनी कम हुई। बरेलवी लोग बड़े जोशो-खरोश से ईद-मीलादुन्नबी का जश्न मनाया करते हैं। एक-दूसरे के घरों में मीलाद और फातिहा-ख़्वानी के बहाने इकट्ठा होते हैं। देवबंदी मज़ार में जाने से मना करते हैं कि वहां जाकर ईमान खराब होता है। इंसान मूर्तिपूजा करने लगता है। देवबंदी मुसलमान पांच वक्त नमाज़ के पाबंद होते हैं। संगीत, कव्वाली आदि को गुनाह मानते हैं। तबलीग की

जमात चलाते हैं। इनकेेे यहां शादी-ब्याह में बाजा-गाजा, नाच-गाना नहीं होता। बड़े सादगी पसंद होते हैं। अक्सर दिन में शादियां करवाते हैं और शाम होेतेे-होतेे बिदाई। देेवबंदी लोेग मुहर्रम में ताजिया वगैरा को भी नहीं मानते और उसकी मज़म्मत करतेे हैं।

ठीक इन सबके उलट बरेलवी लोग नाच-गाना, बाजा-गाजा और नात-कव्वाली के शौकीन होेते हैं। ताजिया, ढोल-ताशा, भीड़-भड़क्का, उर्स, कव्वाली, नात-मुशायरा, मीलाद आदि के ज़रिए अपनी सुन्नियत को ज़माने में जाहिर करते हैं।

इबराहीमपुरा में शिया लोग तादाद में कम हैं। ये लोग नगर मंे अपनी शान्तिप्रिय उपस्थिति के लिए जाने जाते हैं। इनका अलग जमातखाना है और कब्रिस्तान है। शिया लोग मुहर्रम कोे बड़ेे सोजो- ग़म के साथ मातम करतेे हुए मनाते हैं।

सलीमा के अब्बू तो देवबंदी हैं। नमाज़ पढ़ें या न पढ़ें----उनका झुकाव देवबंदियों की तरफ है। जबकि सलीमा की अम्मी का मायका बरेलवी है। इस तरह सेे सलीमा की अम्मी बरेलवी उसूलों को मानती थीं। यही कारण है कि सलीमा के घर अक्सर मीलाद, फातिहा हुआ करती थी। सलीमा की अम्मी बड़े पीर साहब के नाम से ग्यारहवीं शरीफ के महीने में घर में मीलाद ज़रूर करवाया करती थीं। मीलाद के बाद तमाम सामयीन को गोश्त-पुलाव भी खिलाया जाता था।

वही अजमेर जाते हैं जिसे ख्वाज़ा बुलाते हैं---

सलीमा की आर्थिक-स्थिति जब दृढ़ हुई तो उसने सोचा कि क्यों न सपरिवार ख्वाजा गरीब नवाज केे दरगाह की ज़ियारत कर ली जाए। वहां जाकर परिवार की खुशहाली की दुआ की जाएगी। अब्बू की सेहत और बहिनों के अच्छे भविष्य के लिए मन्नतें मांगी जाएंगी।

फिर इन्शाअल्लाह इबराहीमपुरा लौटकर मीलाद और लंगर-ख़्वानी की जाएगी।

अल्लाह का फ़ज्ल और गरीब-नवाज का करम रहा कि सलीमा के मन की मुराद पूरी होने जा रही थी।

अजमेर में खर्च के लिए सलीमा ने बहिनों से छुपाकर दो हज़ार रूपए अतिरिक्त रख लिए थे। ये रूपए उसे गंगाराम सर ने दिए थे कि वक़्त-ज़रूरत काम आएगा---

विश्वकर्मा साहब ने पांच सौ रूपए दिए थे बड़ी देग में डालने के लिए---

सुरैया की मालकिन परमजीत कौर ने भी सौ रूपए दान-पेटी में डालने के लिए दिए थे।

सलीमा ने सोचा कि हिन्दू बिचारे हमारे पीर-फकीरों का कितना सम्मान करते है और ये मुसलमान ससुरेे न अपनों को मानते हैं दिल से और न परायों को।

बस, बैठे-ठाले, खाली-पीली हिन्दुओं को गरियाते रहते हैं। उन्हें काफिर कहते हैं। भले से खुद नमाज़ न पढ़ें, कुरआन की तिलावत न करें, रोज़ा-रमज़ान का एहतराम न करें, सूदखोरी करें, जिनाकारी करें और मुसलमानों की बदहाली के लिए काफ़िरों का गरियाते रहंे।

इबराहीमपुरा से बस द्वारा वे लोग अनूूपपुर जंक्शन रेल्वे स्टेशन पहुंचे।

प्लेटफार्म पर एक मुस्लिम परिवार दिखा, सलीमा ने उन्हीं लोगों के पास सामान रक्खा। बात-चीत से मालूम हुआ कि वे लोग भी अजमेर शरीफ जा रहे हैं।

महिला बुरका पहने थी लेेकिन मुंह ढंका न था। वे लोग विश्रामपुर कोयला खदान से आए थे। उन लोगों का साथ अजमेर तक रहा। चूंकि वे लोग हमेशा अजमेर जियारत के लिए आते थे और पैसे वाले लोग थे सो उनके ठहरने की व्यवस्था एडवांस बुक थी। महिला ने बताया था कि दरगाह में सैकड़ों लोेग चैबीस घण्टे रहे आते हैं---वे ख्वाजा

के मेहमान बन जाते हैं---उनके रहनेे-खाने की व्यवस्था ख्वाजा गरीबनवाज खुद करते हैं---इसलिए सलीमा लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें। गरीब-नवाज अपने ज़ायरीन की खुद देख-भाल करते हैं। यही अकीदा हैै।

सलीमा ने दरगाह पहुंचकर महसूस किया कि वाकई यहां बेसहारा कोई नहीं है। ख्वाजा के नाम की बरकत से अजमेर नगरी में कोई व्यक्ति भूखा नहीं सोता होगा। भीड़-भाड़ से भरे निजाम-गेट से अंदर होते समय उन लोगों के मन में जो घबराहट थी, बड़ी देग के पास पसरे सैकड़ों लोगांे को देख उम्मीद बंधी कि यहां उनका गुजर-बसर हो जाएगा।

पैसे तो सलीमा के पास थे लेकिन इतने भी न थे कि किसी होटल या लाज में ठहरें। अरे, एक-दो दिन ही तो गुज़ारना है यहां---फिर लौट आना है इबराहीमपुरा औेर क्या? दरगाह-शरीफ़ में बड़ी देग और वज़ूखाने के बीच लम्बा-चैड़ा दालान है।

उसी दालान में सैकड़ों ज़ायरीन के बीच उन लोगों ने भी अपनी चादर डाल दी। सफर की थकावट तो थी ही। जैसे ही सलीमा ने चादर बिछाई, अब्बू पसर गए। रूकैया भी उनके बगल में लेट गई।

सलीमा और सुरैया बैठे-बैठे माहौल का जायज़ा लेने लगीं।

उन्हें यकीन ही नहीं हो रहा था कि इबराहीमपुरा की तीन बहिनें अपने कमज़ोर बाप के साथ अजमेर पहंुच गई हैं। सलीमा ने सुरैया के चेहरे को गौर से देखा---सुरैया ने सलीमा को देखा और दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

एक विजयी खिलखिलाहट----मोर्चा फतह कर लेने वाला अहसास---

सलीमा ने थैले से नमकीन का पैकेट निकाल कर खोला और सुरैया की तरफ बढ़ाया। सुरैया ने थोड़ा नमकीन रूकैया की तरफ बढ़ाया। रूकैया भी उठ बैठी। तीनों बहनें ख्वाज़ा गरीब-नवाज की दरगाह आकर ऐसे खुश थीं जैसे उनकी मुराद पूरी हुई हो---सलीमा ने अपनी आटा-चक्की से हुई आमदनी से पैसे बचाकर ग़रीब-नवाज़ की ज़ियारत का अहद किया था जो कि उनकी मेहरबानी से पूरा हुआ चाहता था। वह चाहती थी कि ख़्वाज़ा ग़रीब- नवाज़ की दरगाह में फूल-चादर चढ़ाने वे लोग नहा-धोकर, पाक-साफ होकर जाएंगे। ख्वाजा से अपनी बहिनों के उज्जवल भविष्य के लिए उसे दुआएं मांगनी हैं। अब्बू की सेहत के लिए मन्नत मांगनी है। ख्वाज़ा ही तो

सुनने वाले हैं, मन्नतें पूरी करने वाले हैं।
चाहे अमीर हो या गरीब, सभी उनके दर पर भिखारी बन कर आते हैं।
बुज़ुर्गों के दर पर ज़ियारत करने से पहले बदन की पाकी ज़रूरी होती है।
इधर सुरैया अभी-अभी महीने से फुरसत पाई है।
उसे भी नहाना ज़रूरी है। पता नहीं यहां नहाने-धोने का क्या इंतेज़ाम है?
इन्हीं सब सवालों से सलीमा को बेचैनी होने लगी।
अब्बू और रूकैया को छोड़ सलीमा और सुरैया दरगाह के बाहर आ गए। सोचा कि आस-पास का जायजा लेना चाहिए।
बाहर जगमग, भीड़ और चहल-पहल इतनी थी कि क्या कहने?
सुरैया ने दुपट्टे को इस तरह सिर और चेहरे पर लपेटा था कि फैशनेेबल भी था और परदा भी था। उसका गोरा-चिट्टा चेहरा किसी हीरोइन की तरह दमक रहा था।
सलीमा को सुरैया की खूबसूूरती पर नाज़ था।
तभी सलीमा ने गौैर किया एक युवक उन्हें बड़े ग़ौर से घूर रहा है।
उसकी पोशाक खादिमों की थी।
सलीमा ने दुबारा उसकी निगाहों की रेंज पकड़ी। वह तो सुरैया को एकटक देख रहा था।
सुरैया इस बात से बेख़बर श्रृंगार-पटार की दुकान में सजे सामान देख रही थी।
सलीमा ने उस युवक से निगाह हटाई और एक बुज़ुर्ग से आदमी से पूछा-‘‘चच्चा, क्या इधर आस-पास ठहरने की कोई सस्ती जगह भी है?’’
बुज़ुर्ग ने बताया कि मज़ार के पूर्वी गेट के पास सस्ती जगह मिल जाएगी।
उन्हें उस बुज़ुर्ग से बात करते देख वह खूबसूरत युवक आगे बढ़ आया।
उसने बुज़ुर्ग को परे कर सलीमा से बड़ी नफ़ासत से बात की-‘‘मैं आपकी कोई ख़िदमत कर सकता हूं?’’
सलीमा ने इतनी अच्छी ज़ुबान वाली बातचीत उन फिल्मों में सुनी थी जब डाॅयलाॅग उर्दू में लिखे जाते थे।
वह पूछ ज़रूर सलीमा से रहा था लेकिन उसकी निगाहें सुरैया पर टिकी थीं।
सलीमा ने देखा कि अब सुरैया भी उस युवक को देख रही है।
खादिम दरगाह की वेशभूषा में था---इसलिए उस पर शक करना ठीक नहीं था।

ख़ादिम ने बताया कि उसके पूर्वज ख़्वाज़ा ग़रीब नवाज़ की ख़िदमत किया करते थे। तब से कई पीढ़ियां गुज़र गईं हैं। ख़िदमत का काम अंजाम देना ही उन लोगों का मक़सद है।
वह उन लोगों को अपने हुजरे में मुफ्त में ठहरा सकता है।
परदेस मे सलीमा फूंक-फूंक कर क़दम रखना चाह रही थी।
सलीमा ने कहा कि अपने अब्बू से पूछकर बताएगी।
खादिम युवक आदाब कर चला गया।
लेकिन सलीमा को आभाष होता रहा कि उसकी निगाहें उनका पीछा कर रही हैं।
दरगाह-बाजार में खासी चहल-पहल थी।
इन खानकाहों-दरगाहों के आस-पास कई व्यवसायिक गतिविधियां होती हैैं।
इस देश में आस्था की कई मण्डियां हैं----तमाम धर्मों के आस्था के कई केन्द्र---करोेड़ों-अरबों का व्यापार----ख्वाजा गरीब-नवाज़ के कारण अजमेर शरीफ में भी आस्था के व्यवसाय से लाखों लोगों की आजीविका चल रही है।
सूफीमत मे चिश्तिया सम्प्रदाय का बड़ा महत्व है। हिन्दुस्तान में चिश्तिया सम्प्रदाय फला-फूला और आज दुनिया भर से ख़्वाजा के दीवाने बड़ी तादाद में ज़ियारत के लिए आते हैं। सत्ता-प्रमुख, उद्योगपति और नौकरशाह यहां चादर चढ़ा कर ख़्वाज़ा ग़रीब-नवाज़ को अपना ख़िराजे-अक़ीदत पेश करने से नहीं चूकते। हीरो-हीरोइनें भी ख्वाजा के दर पर चादर चढ़ाने आया करतेे हैं।
अजमेर शरीफ में दाता है तो सिर्फ ख़्वाज़ा गरीब-नवाज़ और बाकी सभी उनके दर के भिखारी।

s

सलीमा चाहेे जितनी बदसूरत हो लेेकिन सुरैया और रूकैया बहुत खूबसूरत हैं।
अजमेर में सुरैया और रूकैया ने दुपट्टे से सिर ढांके रखा।

सुरैया ने इस अदा से सिर ढांका कि खुला चेहरा किसी चांद का टुकड़ा नज़र आता। वाकई इस तरीके से दुपट्टा लपेटने से उसका हुस्न और निखर आया था।
अजमेर के इस सफर के दौरान जाने क्यों सलीमा को ये महसूस होता रहा कि वह अपने साथ लड़कियां नहीं बल्कि कांच का क़ीमती सामान लेकर चल रही हो। थोड़ी सी असावधानी से कांच टूटने का ख़तरा बना रहता है।
लड़कियां हैं भी चुलबुली।
कभी एक दूसरे को चिकौटियां ही काटने लगेंगी।
कभी अंताक्षरी खेलने लगेंगी।
इस बीच मूंगफली या चना-चबेना वाला जो भी गुज़रा नहीं कि बड़े नदीदेपन से उसे ताकने लगेंगी। जाने कब सीखेंगी ये चुड़ैलें!
सलीमा इसीलिए परेशान थी कि इन नामुरादों के साथ कहां ठहरा जाए, कहां नहाया-धोया जाए। ये ऐसे सवाल थे जिनसे सलीमा इब्राहीमपुरा से ही परेशान थी। अब्बू को दीन-दुनिया से कोई मतलब न था।
ऐसे कठिन समय में उस ख़ादिम युवक का प्रस्ताव उसे डूबते को तिनके का सहारा लगा।
सलीमा और सुुरैया दरगाह बाजार का जायजा लेकर लौट रही थीं कि फिर खादिम नमूूदार हुआ। सलीमा ने खादिम से कहा कि वह पहले अड्डा तो दिखलाए।
दोनों बहिनेंे ख़ादिम के पीछे-पीछे चल दीं।
वे लोग दरगाह के पूर्वी दरवाज़े से बाहर निकले। संकरी-संकरी गलियां, गरीब-गुरबा, फकीर मर्द-औरतंे, आजू-बाजू रोजमर्रा के ज़रूरत की छोटी-छोटी दुकानें। गोेश्त की दुकानें, खाने की दुकानंे, चाय की दुकानें। शीरनी-मिठाई की दुकानें। श्रृंगार की दुकानें। दुकानें ही दुकानें।
खादिम उन्हें गली केे अंदर एक और संकरी गली में ले गया।
इस गली के दोनों तरफ भी तीन-चार मंज़िला इमारतें थीं।
हर इमारत किसी न किसी ख़ादिम की मिल्कियत थी।
सुना गया है कि यहां के ख़ादिम ख़्वाज़ा ़ग़रीब नवाज़ की दुआओं से अच्छे मालदार हैं।

देश के कोने-कोने से ़ख्वाज़ा के दीवाने यहां आते हैं और इन ख़ादिमों के घरों में क़याम करते हैं।
ज़ियारत आदि से फुर्सत पाकर वापसी में ये लोग ख़ादिमों को अच्छी रक़म बतौर नज़राना पेश करते हैं। इसी से उनकी रोजी-रोटी चलती है।
ऐसी ही कई संकरी गलियां पारकर दोनों बहनें एक तीन-मंजिली इमारत के सामने पहुंचीं।
ख़ादिम युवक ने बताया कि यही उसका निवास है।
यहां कई लोग पहले से ठहरे हुए हैं।
उर्स के मौक़े पर अजमेर मे ठहरने की जगह मुश्किल से मिल पाती है।
चूंकि ये 'आॅफ-सीज़न' है इसलिए वहां कई कमरे ख़ाली पड़े थे।
खादिम ने बताया कि वे लोग चाहें तो तीसरी मंज़िल का एक कमरा ले सकती हैं।
अंधा क्या चाहे दो आंखें।
दरगाह के चारों तरफ़ कहीं भी एक इंच की जगह भी ख़ाली न थी।
आस्थावान लोग और सामानों की दुगनी कीमत लगाए दुकानदारों से अटी-पटी है अजमेर की गलिया----..
इन गलियांे में व्याप्त हैं आस्था केे दर्शनार्थी और अंधविश्वास की दुकानें----
अपने दुखों और नाउम्मीदियों के बीच डूबते-उबरते असंख्य-असंख्य जन!
मज़ारों, मठों और तीर्थ-स्थलों पर इन्हीं भावनाओं का व्यापार किया जाता है।
यही भावना इन स्थानों की आजीविका का साधन बनती हैं।
सलीमा ने सोचा कि इन खादिमों, दुकानदारों कोे न चक्की चलानी पड़ती है, न देह बेचना होता है, न मजदूरी करनी पड़ती है। ये लोग ख़्वाजा ़ग़रीब-नवाज़ का शुक्र मनाया करते हैं कि जिनके सदके और तुफैल से इनकी कई पीढ़ियों को रोजी-रोटी के लिए कहीं भटकना नहीं पड़ा और आने वाले युगों तक रोजी कमाने की फ़िक्र से ख़्वाज़ा ने आज़ाद कर दिया है।
ख़ादिम केे साथ सलीमा लोग इमारत में दाखिल हुुए।
सामने बैठकी थी, जहां एक बुजुर्ग बैठे हुए थे। मोटे से बुजुर्ग----सफेद कपड़े पर काला कोट---वैसा ही कोट जैसा खादिम ने पहन रक्खा था। सफेद दाढ़ी में उनका चेहरा बड़ा

नूरानी लग रहा था।
उनके सामने दो लोग हाथ बांधे बैठे हुए थे।
सलीमा और सुरैया ने अपने सिर पर दुपट्टा ठीक कर बुजुर्गवार को आदाब किया और ख़ादिम के पीछे-पीछे दाहिनी ओर सीढ़ियों की तरफ चली गईं।
सीढ़ी हल्के अंधेरे में थी।
तीसरी मंज़िल आई तो सीढ़ियां छोड़ एक दालान में आ गए।
दालान के दोनों तरफ कमरेे थे।
कुछ कमरों में रौशनी थी, एक कमरा अंधेरा था।
अंधेरे कमरे का ताला खोल कर खादिम अंदर गया और बल्ब जलाकर उन्हें अंदर आने का इशारा किया।
दोनों बहिन उस कमरे के अंदर दाख़िल हुईं।
बारह बाई बारह का बड़ा सा कमरा था, जिस पर एक दरी बिछी हुई थी। कमरे के बीच में एक पंखा लटका हुआ था। कमरे में बड़ी-बड़ी दो खिड़कियां थीं।
कमरे के पीछे तरफ एक दरवाज़ा था।
दरवाज़े के पास एक तिपाई पर घड़ा और एक गिलास रखा था।
दरवाज़े को खादिम ने खोला और बताया-''गुसलखाना---''
फिर ख़ादिम ने कहा कि आप लोगों को एक ताला खरीदकर लाना होगा।
दिल चाहे जब तक यहां रहें।
सब ख़्वाज़ा का करम है।
सलीमा ने खिड़की के पट खोले तो नीचे की दुकान से एक मशहूर क़व्वाली के बोल गूंज उठे-
'ये तो ख़्वाज़ा का करम है
मेरे ख़्वाज़ा का करम है!''
सलीमा ने सुरैया की तरफ देखा जो कि ख़ादिम से नज़रें लड़ा रही थी।
सलीमा ने इसका बुरा नहीं माना।
अरे, ये तो उम्र ही ऐसी है।
लड़कियां ऐसे ही तो दुनियादारी के गुर सीखती है और या इस्तेमाल हो जाती हैं या

फिर अनुभव की आंच में तपकर खुदमुख्तार बनती हैैं।
सलीमा ने ख़ादिम का शुक्रिया अदा किया और ये भी कह दिया कि हमारे पास किराया अदा करने के लिए पैसे नहीं हैं।
ख़ादिम मुस्कुरा दिया और बोला कि ख़्वाज़ा से बिदा लेकर जब जाएं तो जो भी बन पड़े नज़राना दे दें। ये जो जलवा यहां दिखलाई दे रहा है सब ख़्वाज़ा का ही तो करम है, वरना देश-विदेश से लाखों लोग यहां क्यों आते?
अब्बू इमारत में आकर खुश हुए और दरी पर लेट गए।
सलीमा और सुरैया बाहर जाकर होटल से बड़े के गोश्त की बिरयानी ले आईं।
कितना सस्ता और लज़ीज़ खाना।
सलीमा को लगने लगा कि इस तरह तो वे लोग कई दिन ख्वाजा के मेहमान रह सकते हैैं।
'बिस्मिल्लाह' पढ़कर खाना खाया गया और अब्बू को कमरे में छोड़कर तीनों बहिन दरगाह शरीफ चली गईं। वहां क़व्वाली का समां बंधा हुआ था।
नाल-ढोलक, हारमोनियम और बेंजो के सधे हुए सुर-ताल के बीच एक से बढ़कर एक क़व्वालियों का लुत्फ़ रात दस बजे तक चलता रहा।
देर रात तक दरगाह-शरीफ़ की रौनक़ का मज़ा वे ले ही रही थीं कि ख़ादिम युवक प्रकट हुआ। उसने सलीमा को मुखातिब किया और उसकी निगाहें सुरैया पर टिकी थीं-''अब चलना नहीं है क्या? रात काफ़ी हो गई है। फजिर की अज़ान पर फिर यहां हाज़िरी दीजिए आप लोग।''
बड़े अनमने ढंग से उठी थी सलीमा।
उसका मन नहीं कर रहा था कि वहां से कहीं जाए।
जब वे लोग उठे तो पुनः भूख का एहसास हुआ।
रूकैया तो भूख सहन कर ही नहीं सकती। भुक्खड़ ठहरी।
उसने सलीमा से फुसफुसा कर कहा- ''आपा भूख!''
सलीमा ने ख़ादिम से कहा कि हम लोग खाना खाकर आते हैं।
ख़ादिम कहां पीछा छोड़ने वाला था।
उसने कहा कि वे लोग घर पहुंचें। खाना वह लेकर आ रहा है।

इधर वे लोग क़याम-गाह पहुंचीं उधर पीछे से खादिम भी आ धमका।
उसके हाथ में पोलीथीन का एक पैकेट था।
उसने बताया-"शानदार बिरयानी है। इतने से आप लोगों का काम चल जाएगा?"
सलीमा उस समय गुसलखाने में थी।
सुरैया ने मुस्कुराकर कहा-"हां, काफी है।"
रूकैया ने देखा था कि खादिम ने सुरैया के हाथ में पोलीथीन के अलावा एक काग़ज़ का टुकड़ा भी पकड़ाया था। रूकैया सुरैया की परम-हितैषी ठहरी। उसने ये बात हज़म कर ली।
उस काग़ज़ को सुरैया ने तत्काल अपनी मुट्ठी में छुपा लिया था।
सलीमा जब गुसलखाने से लौटी तो उसने अब्बू को आवाज़ देकर जगाया और फिर वे सभी एक साथ बिरयानी पर टूट पड़े।
वाक़ई बिरयानी बड़ी लजीज़ बनी थी।

ख़्वाज़ा की दीवानी----..

पेट में जब बिरयानी पहुंची तब उन्हें कुछ राहत मिली।
अब्बू तो बिरयानी खाकर पसर गए थे, और लेटे-लेटे बीड़ी के कश खींचने लगे।
सुरैया और रूकैया बिरयानी में आई 'नल्ली' के अंदर से गूदा निकालने का भगीरथ-प्रयास कर रही थीं। घर होता तो लोंढे से 'नल्ली' फोड़कर गूदा निकाल लिया जाता। रूकैया ने सुरैया से गूदा निकालने के लिए मदद ली। सुरैया फर्श पर 'नल्ली' पटक-पटक कर गूदा बाहर निकाली और गपाक् से पूरा गूदा खुद ही खा ली। रूकैया देखती रह गई, और बुरा सा मुंह बना कर सुरैया से नाराज़ हो गई।
सलीमा ने उसे मनाने के लिए कहा कि चलो चल कर दरगाह की रौनक़ देखी जाए, अभी से क्या सोना? रूकैया तैयार हो गई।
सलीमा ने सुरैया से भी पूछा तो सुरैया ने इंकार कर दिया।
वाजिब भी था। सुरैया बदन से नापाक जो थी।
सलीमा अब्बू के साथ सुरैया को कमरे में छोड़कर दरगाह जाने के लिए सीढ़ी से उतरने लगी।
बाहर उसने ख़ादिम को देखा जो कि एक पान की गुमटी में खड़ा था।
ख़ादिम ने सलीमा और रूकैया को देख मुस्कुराया।
सलमा उसकी अहसानमंद थी। वह भी अदब के लिहाज से मुस्कुरा दी।
सलमा नहीं जानती थी कि सुरैया और ख़ादिम के बीच क्या खिचड़ी पक रही है। वह जानती भी तो क्या कर सकती थी। सुरैया को खुद समझदार होना चाहिए। आखिर, सलीमा कोई माली तो है नहीं कि फलदार पेड़ों की रखवाली में परेशान रहे।
रूकैया सब कुछ जानती थी इसलिए वह नज़रें नीची किए रही।
सलीमा रूकैया को लिए-दिए दरगाह की तरफ बढ़ती चली गई।
पूर्वी गेट से उनके आगे केरल के मुसलीमान सफेद कमीज, लुंगी और सिर पर साफा लपेटे दाख़िल हो रहे थे। दोनों बहनें उनके पीछे-पीछे मज़ार की तरफ क़दम बढ़ाती गईं।
जैसे-जैसे सलीमा, मज़ार के नज़दीक पहुंच रही थी, हारमोनियम, ढोलक और क़व्वालों

की आवाज़ से उसके दिल में बेचैनी पैदा हो रही थी।
वहां बड़ी संख्या में लोग बैठकर क़व्वाली का आनंद उठा रहे थे।
एक बुजुर्ग क़व्वाल थे जिनके साथ जवान सहयोगी बड़ी संजीदगी से उम्दा कलाम पेश कर रहे थे। ढोलक-नाल और हारमोनियम की आवाज़ से पूरा माहौल लोगों के सोए दिलों में सूफीमत के लिए श्रद्धा पैदा कर रहा था।
बुजुर्ग क़व्वाल एक मशहूर क़व्वाली को गा रहे थे-
''मैं तो दीवानी
ख़्वाज़ा की दीवानी!''
सूफीमत में भक्त स्वयं को स्त्री के रूप में देखता है और अपने पीर को पुरूश!
एक स्त्री जिस तरह अभिसार के लिए मनुहार करती है ठीक उसी तरह दरवेश अपने पीर का प्यार पाने के लिए कोशिशें करते हैं।
उधर सुरैया और ख़ादिम के बीच कैसी खिचड़ी पक रही थी, सलीमा उससे अंजान थी।
क़व्वाली के बोल, हारमोनियम-बैंजो के सुर और ढोलक की थाप ने ऐसा समां बांधा कि सलीमा की आंखें भींग गईं। वह कब रोने लगी जान न पाई। वह हिचकियां ले-लेकर रो रही थी। क़व्वाल अपनी धुन में मगन गाए जा रहे थे---
''दिवानी-दिवानी, दिवानी-दिवानी, दिवानी-दिवानी, दिवानी-दिवानी,
दीवानी, ख़्वाजा की दीवानी, दिवानी मैं तो दीवानी, ख़्वाज़ा की दीवानी
सुरैया की समझ में न आया कि ये अचानक सलीमा आपा को हो क्या गया है? वह रो क्यों रही हैं? सलीमा को उसने इस तरह रोते हुए कभी देखा न था, सो रूकैया घबरा गई।
उसने आस-पास नज़र दौड़ाई।
क़व्वाली का असर तमाम ज़ायरीन के चेहरों पर पढ़ा जा सकता था।
तभी एक औरत जाने कहां से नमूदार हुई।
वह पचास साल की भरपूर औरत थी।
उसके खिचड़ी बाल बिखरे हुए थे। चेहरा भरा-भरा लेकिन एक अजीब सा दीवानापन। चैड़ा माथा, लम्बी नाक---कहीं से भी न लगता कि किसी गरीब खानदान से होगी लेकिन उसने गंदा सा सलवार-सूट पहन हुई थी। पहले तो वह क़व्वाल और मज़ार के

बीच खड़ी हो कर गुम्बद को टकटकी बांधे देखती रही। फिर उसने दुपट्टा अपने सिर पर इस तरह डाला कि उसका मुंह भी ढंक गया। अब वह राजस्थानी औरतों की तरह चक्कर काट-काट कर ढोलक की थाप पर नाचने लगी।
क़व्वालों की आवाज़ और तेज़ हुई, नाल-ढोलक द्रुत में बजने लगे।
रूहानियत से भरपूर था वह पल----
ज़ायरीन क़व्वालों के आगे नज़राने के तौर पर धकाधक रूपए डालने लगे।
सलीमा रोते हुए सोचने लगी कि इस ज़िन्दगी में इतने सुकून से वह पहले कभी नहीं रोई थी। रोने में भी एक लज़्ज़त है जिसका अहसास उसे हुआ। वह मगन थी।
उसने सोचा कि इतना फूट-फूट कर वह तब भी नहीं रोई थी जब अम्मी घर छोड़कर भाग गई थीं या जब गंगाराम सर ने उसे नादान बच्ची से एक सयानी औरत में तब्दील किया था।
क़व्वाली थी कि ख़त्म होने का नाम नहीं ले रही थी।
इस बीच मज़ार के अंदर के चिश्तिया चिराग़ बुझाने का वक़्त आ गया।
ख़ादिम लोग मज़ार के अंदरूनी हिस्सों की सफाई खुद अपने हाथों से करते हैं। वे बड़ी अक़ीदत और नर्मियत से मज़ार के फर्श की सफाई करते हैं। फिर चिराग़ बुझाकर बाहर आते हैं। उसके बाद मज़ार का मुख्य-द्वार बंद किया जाता है।
अक़ीदतमंद लोग पंक्तिबद्ध मजार की तरफ मुंह करके हाथ बांधे खड़े रहते हैं।
बीच में इतनी जगह थी कि ख़ादिम आ-जा सकें।
तमाम ख़ादिम वहां उस रस्म में हाज़िर रहते हैं।
सलीमा के साथ खड़ी बुर्कानशीं खातून बड़ी आलिम थी। सलीमा ने ख्वाजा गरीब नवाज के बारे में उससे जानना चाहा तो उसने फुसफुसाते हुए ख़्वाज़ा ग़रीब नवाज़ के आखिरी सफर की दास्तान सुनाई।
कहते हैं कि अपने देहावसान के पूर्व ख़्वाज़ा ग़रीब नवाज़ को मालूम हो गया था कि ये उनका आखिरी साल है। आपने अपने मुरीदों को ज़रूरी हिदायतें और वसीयतें फ़रमाईं। जिन लोगों को ख़िलाफ़त देनी थी उन लोगों को ख़िलाफ़त से सरफ़राज़ फ़रमाया। हुज़ूर साहब एक रोज़ अजमेर की जामा-मस्जिद में तशरीफ़ फ़रमा थे। मुरीद और अक़ीदतमंद अहबाब हाज़िरे-ख़िदमत थे। आप मौत के फ़रिश्तों के बारे में बातें कर

रहे थे कि शेख़ अली सन्जरी से मुख़ातब हुए और उनसे ख़्वाज़ा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की खिलाफ़त का फ़रमान लिखवाया। कुतुब साहब हाज़िरे ख़िदमत थे। आपने फ़रमाया-“ये नेमतें मेरे बुज़ुर्गों से सिलसिला-ब-सिलसिला फ़क़ीर तक पहुंची हैं, अब मेरा आखिरी वक़्त आ पहुंचा है। ये अमानतें तुम्हारे हवाले करता हूं, इस अमानत का हक़ हर हालत में अदा करते रहना ताकि क़यामत के दिन तुझे अपने बुज़ुर्गों के सामने शर्मिन्दा न होना पड़े।”

फिर अपने बड़े साहबजादे हज़रत ख़्वाज़ा फ़खरूद्दीन को नसीहत फ़रमाई-“दुनिया की सभी चीज़ें मिटने वाली और फ़ना होने वाली हैं। हर वक़्त ख़ुदा की पनाह मांगते रहना ओर किसी चीज़ पर भरोसा न रखना, तकलीफ़ और मुसीबत के समय सब्र और हिम्मत का दामन न छोड़ना।”

633 हिजरी में पांच और छः रजब की दर्मियानी रात को हमेशा की तरह ईशा की नमाज़ के बाद आप अपने हुजरे में गए और अंदर से दरवाज़ा बंद करके यादे ख़ुदा में लग गए। रात भर दुरूद शरीफ़ और ज़िक्र की आवाज़ आती रही। सुबह होने से पहले यह आवाज़ आनी बंद हो गई। सूरज निकलने के बाद भी दरवाज़ा नहीं खुला तो ख़ादिमों ने दस्तके दीं, उस पर भी कोई जवाब नहीं मिला तो परेशानी बढ़ गई। आखिरकार मजबूर होकर दरवाज़ा तोड़कर अंदर गए तो देखा कि आपकी रूहे-मुबारक परवाज़ कर चुकी थी।

जिस हुजरे पर आपका देहावसान हुआ था उसी हुजरे में आपको दफ़न कर दिया गया। उसी वक़्त से आपका आस्ताना हिन्दुस्तान का रूहानी-मरक़ज़ बना हुआ है।

हर साल एक रजब से छः रजब तक आपका उर्स बड़ी श्रद्धा से मनाया जाता है।

सलीमा और रूकैया भी मज़ार के मुख्य-द्वार के सामने लगी लाईन में शामिल हो गईं। सलीमा रूकैया के कान में फुसफुसाई-“देखें, अब क्या होता है।”

सलीमा को उस माहौल में बहुत मज़ा आ रहा था। उसे इसलिए भी अच्छा लग रहा था कि ख़्वाजा के दरबार में जितने भी लोग दिखते हैं, चाहे वो अमीर हांे या ग़रीब, सभी भिखारी जैसे दिखते हैं। सबके चेहरों पर बेचारगी का आलम दिखलाई देता है। सभी की वीरान आंखों में उम्मीद की किरनें फूटती दिखती हैं। किसी अनहोनी, किसी चमत्कार की आशा से लोग आंखें झपकाते भी नहीं। ऐसा लगता है कि जैसे उनकी ज़िन्दगी के

तमाम दुख ख़त्म हो गए हों। उनकी तमाम चिन्ताएं किसी गहरे कुंए में फेंकी जा चुकी हों। उनके सारे दर्द हवा में उड़ गए हों।

वाकई, ये ख़्वाजा ग़रीब-नवाज़ का करम ही तो है।

मज़ार के अंदर ख़ादिम लोग खुद अपने हाथ से सफाई का काम कर रहे थे। इस बीच क़व्वालों की की आवाज़ में जोश भर आया था। वे फ़ारसी का एक बंद गा रहे थे जिसका मतलब था कि दुनिया में संतो के शहंशाह हैं ख़्वाज़ा मुईनुद्दीन, आध्यात्म के चिराग़ को सारे संसार में रौशन करते हैं ख़्वाज़ा ग़रीब-नवाज़।

ख़्वाज़ा-ख़्वाज़गां मुईनुद्दीन
अशरफ़े औलिया-ए-रूए ज़मीं
आफ़ताबे सपहरे कौनों-मकां
बादशाहे शरीरे मुल्के यकीं
इलाही ता बुवद खुर्शीद ओ माही
चिराग़े चिश्तियां रा रोशनाई

(या इलाही जब तक चांद-सूरज क़ायम है, चिश्तियों के चिराग़ को रौशन रख!)

सलीमा बुर्कानशीन ख़ातून का साथ पकड़े हुए थी। वह काफी जानकार दिखलाई देती थी।

सलीमा ने देखा कि लोग बिना आवाज़ लाईन बनाकर खड़े मज़ार के अंदर होने वाली हरक़त को गौर से देख रहे हैं।

तभी मज़ार के अंदर से एक ख़ादिम बाहर निकला। वह एक बूढ़ा और लम्बे क़द का ख़ादिम था। उसने लाल, हरी, पीली और सुनहरी रंगत वाली टोपी पहन रखी थी। उसके हाथ में मोरपंख से बना मुरछल था। खादिम मुरछल की पूंछ से लाईन में खड़े लोगों की पीठ और सिर पर प्रहार कर रहा था। लोग हाथ जोड़े, सिर झुकाए उस मुरछल की मार को बड़ी श्रद्धा से झेल रहे थे। जब सलीमा का नंबर आया तो वह भी झुक गई। मुरछल की मूठ उसकी पीठ पर पड़ी तो बड़ी तेज़ लेकिन सलीमा को ऐसा लगा कि उसकी रीढ़ की हड्डी में जमाने का समाया दर्द जादू की तरह ग़ायब हो गया है। वह चाहती थी कि ख़ादिम उस मुरछल से उसकी पीठ पर प्रहार करता ही रहे। सलीमा ने सोचा कि लाईन में खड़े हर शख़्स की यही मनोदशा होगी। उसके बाद पीली रंग की

ख़ालिस मोम की लम्बी-लम्बी मोमबत्तियां लिए एक और बुज़ुर्ग ख़ादिम निकले। बुज़ुर्ग उन बुझी मोमबत्तियों को लाईन में लगे सभी ज़ायरीन के सिर से छुआ रहे थे। आदमी लोग अपने सिर पर पहनी टोपी या रूमाल हटा कर उस मोमबत्ती का स्पर्श ले रहे थे। औरतें सिर से आंचल या दुपट्टा हटा कर मोमबत्ती को सिर पर छूने दे रही थीं। फिर एक-एक कर सभी ख़ादिम मज़ार के अंदर से बाहर निकल आए। उसके बाद मुख्य ख़ादिम ने मजार का सुनहरी रंगत वाला मुख्य-द्वार पर ताला जड़ दिया। एक मोटी रस्सी के सहारे कई तालों की चाभियां बंधी हुई थीं। उन चाभियों को अब श्रद्धालु चूमना चाहते थे। जिसके लिए ख़ादिम रूपए लेकर चूमने देते थे।

सलीमा को ये रस्म ठीक न लगी। उसने सामने दीवार पर टंगी घड़ी देखी। रात के तकरीबन साढ़े दस बज रहे थे। उसे थकावट के साथ नींद का अहसास हुआ। उसने रूकैया को देखा जो कि लाईन से बाहर होकर खड़ी जम्हाई ले रही है।

सलीमा ने सोचा कि अब अगले दिन ढंग से पूरा मज़ा लिया जाएगा। आज बस इतना ही। वह बुर्कानशीं ख़ातून को सलाम करके लाईन से बाहर निकल आई। रूकैया को लेकर सलीमा जल्द से जल्द क़यामगाह पहुंच जाना चाहती थी।

अभी भी दरगाह के बाहर भिखारी मंडरा रहे थे। सलीमा ने सोचा कि भिखारी भी यहां शिफ्ट ड्यूटी करते हैं शायद! वरना आधी रात को भिखारी!

जैसे ही सलीमा और रूकैया कमरे में पहुंचे तो कमरा बंद मिला। रूकैया ने दरवाज़ा खटखटाया। अंदर से आहट न पाकर सलीमा की तरफ देखी। सलीमा बोली-‘‘सो गई होगी स्साली!’’

फिर सलीमा ने दरवाज़ा खटखटाया।

दरवाज़ा न खुला तो सलीमा ने दरवाज़े पर हल्का धक्का मारा।

दरवाज़ा खुल गया और वे दोनों अंदर पहुंचीं।

अंदर का हाल देख सलीमा के होश उड़ गए।

कमरे के अंदर अब्बू दरी पर चादर ओढ़े गहरी नींद मंे थे।

सुरैया का कहीं अता-पता न था।

रूकैया ने बाथरूम का दरवाज़ा खोल कर देख आई किन्तु सुरैया का सुराग़ न मिला।

सलीमा ने अब्बू को झिंझोड़कर जगाया।

उनींदे से उठे अब्बू जैसे सपना देख रहे हों-“का हुआ?”
सलीमा ने प्रश्न दागा-“सुरैया कहां गई? क्या वो बता कर गई है?”
अब्बू ने दिमाग पर ज़ोर देकर याद किया और बोले-“वो खदिमवा आया था, उसी के साथ ये बोल कर गई है कि दरगाह जा रही है।”
सलीमा का माथा ठनका। नापाक-बदन तो सुरैया दरगाह जाने से रही। ज़रूर कोई दूसरा चक्कर है।
सलीमा को परेशान देख रूकैया ने कुछ बताना चाहा-“आपा---!”
“का बात है?”-सलीमा हुड़क दी उसको।
रूकैया कुछ न बोली।
सलीमा ने कहा-“चल फिर से दरगाह चलते हैं।”
फिर सलीमा ने अब्बू से कहा-“जागते रहिएगा, हम लोग तुरंत आ रहे हैं।”
सलीमा दरवाज़ा बंद कर रही थी तभी रूकैया फुसफुसाई-“आपा, एक बात बताऊं!”
सलीमा चिढ़कर बोली-“बता न।”
तब रूकैया ने बताया कि किस तरह खादिम ने बिरयानी का पैकेट सुरैया के हाथों में देते समय उसके हाथ में एक कागज़ का पुर्जा भी थमाया था। जिसे बड़ी सफाई से सुरैया ने छुपा लिया था।
सलीमा का माथा ठनका।
बोली-“जवानी चढ़ी है स्साली को, सम्भाले नहीं संभलती तो मैं क्या करूं। इतना समझाया कुछ असर नहीं हुआ।”
अभी वे बातें कर ही रहे थे कि सीढ़ी पर आहट हुई और साथ ही सुरैया की खिलखिलाहट भी सुनाई दी।
देखा कि सुरैया आगे-आगे सीढ़ियां चढ़ रही है और उसके पीछे खादिम है।
सलीमा और रूकैया को देख सुरैया थोड़ा ठिठकी फिर सामान्य बनने की कोशिश करती हुई बोली-“आपा, दरगाह में तुम लोग कहां पर थे? कितना खोजा पर मिले नहीं।”
सलीमा कुछ न बोली और मुंह बनाए कमरे के अंदर चली गईं।
रूकैया भी उसके पीछे हो ली।
खादिम उल्टे पैर लौट तो ज़रूर गया था, लेकिन उसने सुरैया का पीछा नहीं छोड़ा था।

s

दूसरे दिन सुबह फ़जिर की अज़ान के साथ सलीमा की नींद खुली और वह एक झटके से उठ बैठी। अज़ान तो इब्राहीमपुरा में भी होती थी लेकिन दरगाह की अज़ान और वहां के माहौल ने अचानक उसे मज़हबी बना दिया था। सलीमा के मन में आया कि जल्द से जल्द वज़ू बनाकर दरगाह चली जाए। वहां औरतों की नमाज़ के लिए अलग से जगह है। सैकड़ों औरतें दिन-भर या तो वहां नमाज़ अदा करतीं या कुरान-मजीद की तिलावत करते या फिर तस्बीह पढ़ते मिल ही जाती हैं।

उसने एक ही झटके से बिस्तर छोड़ दिया।

जाने कहां से बदन में इतनी चुस्ती आ गई थी, वह समझ नहीं पा रही थी।

रात दरगाह पर मिली पर्दानशीं ख़ातून ने कहा भी था कि फ़जिर के समय दरगाह में बहुत अच्छा लगता है।

कोई शोर-शराबा नहीं, कोई भागम-भाग नहीं, सिर्फ इबादत का रंग सुबह भरपूर नज़र आता है।

आज उसे दरगाह पर चादर भी चढ़ाना है।

चलकर उसका भी अंदाजा कर लिया जाएगा।

फिर तारागढ़ पहाड़ी पर चढ़ने का कार्यक्रम भी तो बनाना है।

सलीमा की खटर-पटर से सुरैया की नींद खुली।

सुरैया ने आंखें मलते हुए पूछा-“अब्भी से काहे जाग गई आपा?”

सलीमा को सुरैया पर दुलार हो आया-“तू भी उठ और नहा-धो कर पाक-साफ हो ले। आज दस बजे तक नाश्ता-पानी करके हम भी ग़रीब-नवाज़ की दरगाह पे चादर चढ़ा देंगे। मैं दरगाह जा रही हूं नमाज़ पढ़ने। पहले तू इत्मीनान से तैयार हो जाना फिर रूकैया के साथ अब्बू को भी जगा देना।”

सुरैया को हिदायत देकर सलीमा ने दुपट्टा सिर पर डाल दरगाह चली गई।

मकान से बाहर आई तो देखा कि एक बच्चा अपनी मां की गोद में चढ़ने की ज़िद कर रहा है। उसने औरत को पहचाना। यह वही परदानशीन औरत थी।

वे लोग भी उसी मकान में ठहरे हुए थे।

वह परदानशीन औरत चाहती थी कि बच्चा पैदल चले।

साथ में जो मर्द था वह टोपी लगाए हड़बड़ाया हुआ था-‘‘इसीलिए कह रहा था कि तुम लोग नाहक न उठो, सोए रहो। अब इस नालायक के चलते कहीं मेरी नमाज़ कज़ा न हो जाए।’’

सलीमा को उस बच्चे पर दया आई। उसने बच्चे पुचकारते हुए उन लोगों से कहा-‘‘काहे इसे रूला रहे हैं?’’

औरत ने उसकी तरफ देखा और बोली-‘‘दरगाह में पाक-साफ रहना हराम कर दिया है इसने। थोड़ा भी पैदल नहीं चलता। कहीं मूत-मात दिया तो सब चैपट हो जाएगा।’’

सलीमा ने उस बच्चे को गोद पर उठा लिया-‘‘चलिए मुझे भी दरगाह ही चलना है। कितना प्यारा बच्चा है ये, नाहक रूला रहे हैं इसे आप लोग।’’

गोद में बच्चा आकर चुप हो गया लेकिन सलीमा ने महसूस किया कि बच्चा वज़नी है। तभी तो औरत उसे ढोना नहीं चाहती है।

वे लोग साथ-साथ दरगाह पहुंचे।

वहां मर्द शाहजहानी मस्जिद की तरफ चला गया। सलीमा और वह औरत मज़ार के सामने बिछे जानिमाज़ के एक कोने पर बच्चे को बिठा कर नमाज़ की नीयत बांधने लगीं।

नमाज़ अदा कर सलीमा ने बाहर से ही ख़्वाज़ा मोईनुद्दीन चिश्ती रहमतुल्लाह अलैह की मज़ार को बड़ी अक़ीदत से सलाम किया और सोचा कि दरगाह के आस-पास का जायज़ा लिया जाए।

मज़ार के पीछे होते हुए वह बड़े हौज़ तक पहुंची।

वहां बड़ी अफरा-तफरी का आलम था।

लम्बे-चौड़े दालान पर सोए हुए लोगों को फर्श की धुलाई करने वाले खुद्दाम लोग हल्ला कर-करके भगा रहे थे।

सैकड़ों ग़रीब ज़ायरीनों के लिए वहां रात गुज़ारने का आसरा रहता है।

यदि उन लोगों को ख़ादिम वाली व्यवस्था न मिली होती तो उनका भी यही हश्र होता।
टहलती सलीमा बड़ी देग के पास पहुंची। अकबर बादशाह ने प्रण किया था कि चित्तौड़गढ़ की विजय के बाद सीधे अजमेर शरीफ़ हाज़िर होकर एक बड़ी देग पेश करेगा। इस देग में सौ मन चावल पक सकता है।
बुलंद दरवाज़ा के बाईं तरफ छोटी देग है जिसे नूरूद्दीन जहांगीर ने पेश किया था, जिसमें अस्सी मन चावल पक सकता है।
बुलंद दरवाज़े से सलीमा बाहर निकली तो एक आलीशान मस्जिद दिखाई दी। जिसे अकबरी मस्जिद कहते हैं। शहजादा सलीम के जन्म के छः माह बाद जब अकबर बादशाह दरगाह की ज़ियारत के लिए अजमेर आया तो उसने मस्जिद के निर्माण का हुक्म दिया था।
फिर एक बड़ा सा दरवाज़ा आया, जिसे कलिमा दरवाज़ा कहते हैं। इसके ऊपर नक्कारखाना है।
कलिमा दरवाज़ा से बाहर आने पर दरगाह का सबसे बड़ा दरवाज़ा निज़ाम गेट मिला। इसे नवाब हैदराबाद ने बनवाया था।
निजाम गेट से दरगाह की तरफ सलीमा ने देखा कि वह नौजवान खादिम चला आ रहा है।
कहीं रास्ता बदलने का मौका नहीं था और ख़ादिम से आमना-सामना हो ही गया।
सलीमा ने उसे सलाम किया।
खादिम ने पूछा-''आज तो चादर चढ़ाना है न?''
सलीमा ने हां में सिर हिलाया।
-''ठीक है, जवाल यानी बारह बजे से पहले चादर चढ़ा लें तो बेहतर है, वरना फिर जुहर की नमाज़ के बाद ही चादर चढ़ाना ठीक रहेगा।''
सलीमा कुछ न बोलकर सिर हिलाती रही।
खादिम आगे बढ़ गया।
सलीमा निजाम गेट के बाहर निकल आई और भिखारियों से दामन बचाती एक चाय वाले के पास जा पहुंची। चायवाले ने सवालिया निगाहों से उसे घूरा। सलीमा ने एक चाय का इशारा किया। चायवाले ने प्लास्टिक के कप में एक चाय उसे दी।

सलीमा को सुबह उठते के साथ चाय की आदत है।
चाय पीकर उसके जी में जी आया, तब उसे सुरैया और रूकैया की याद आई और वह तेज़ क़दमों से डेरे की तरफ लौट आई।

S

बजट के मुताबिक उन लोगों को अजमेर में तीन दिन क़याम करना था, लेकिन नौजवान ख़ादिम के कारण वे लोग लगभग पांच दिन वहां ठहरे।
खादिम ने उन लोगों को एक दिन तारागढ़ की पहाड़ी के दर्शन कराए। ढाई दिन का झोंपड़ा देखा। तारागढ़ की पहाड़ी पर उस चट्टान को भी देखा जिसे हुज़ूर गरीब-नवाज़ ने अपनी उंगली से रोका था---वह एक विशालकाय चट्टान था।
एक दिन अना-सागर झील की सैर हुई। झील पर नौका-विहार किया गया। झील के बीच में एक टापू है जहां पिकनिक-स्पाॅट है। वहां भी गए वे लोग।
खादिम के इसरार पर वे अकबर बादशाह का किला भी देख आए।
अब उन्हें लौटना था।
सुरैया और खादिम की दोस्ती पूरे ज़ोर पर थी।
उसने सुरैया के साथ-साथ रूकैया के लिए भी राजस्थानी घाघरा-चुनरी और चप्पलें खरीद कर भेंट की थीं। अब्बू को उसने एक लुंगी और टोपी दिया। सलीमा ने अपने लिए कुछ भी खरीदने से सख्ती से मना कर दिया था। वह नहीं चाहती थी कि सुरैया को बढ़ावा दे।
जब वे लोग बस-स्टेंड आए ताकि अजमेर से आगरा के लिए बस पकड़ी जाए तो खादिम भी उन्हें छोड़ने आया था।
सुरैया और खादिम बस छूटने तक नीचे खड़े जाने क्या-क्या बतियाते रहे थे।
सलीमा ने अल्ला-अल्ला करके वे दिन काटे।
वह चाहती थी कि कैसे बस छूटे और उस खादिम और सुरैया के बीच पनपते सम्बंधों

का पटाक्षेप हो।

उड़ गई पिंजरे की मैना----.

उस समय रात के नौ बजे थे।
सलीमा ने रूकैया से कहा कि जल्दी से चाय बनाए।
सलीमा का माथा दुख रहा था। लग रहा था कि दर्द के कारण नसें फट जाएंगी।
वह सोच रही थी कि यदि अब भी सुरैया घर आ जाए तो वह उसे माफ कर देगी और कुछ न बोलेगी, लेकिन सुरैया का कहीं अता-पता नहीं था।
सलीमा चाह रही थी कि चिंता ही चिंता में और ज्यादा देर न की जाए। रात के नौ ही बजे हैं। ज्यादा रात हुई नहीं है। अभी तो सड़कों पर आमद-रफ़्त है। देर करेंगी तो फिर सुनसान में उन्हें निकलने में दिक्कत होगी।
वीनस-ब्यूटी पार्लर इब्राहीमपुरा के दूसरे छोर पर है।
जोड़ा तालाब के पार, टाकीज़ के पीछे वाली अंधेरी गली से जाने पर ब्यूटी-पार्लर नज़दीक है।
रात में वह रास्ता उतना चालू नहीं रहता है।
उधर बिलसपुरिहा नौकरानियां, पल्लेदार और भड़भूंजे रहते हैं। वहां एक दारू-भट्टी भी है। सुनते हैं कि जिस्म-फरोशी भी होती है।
यदि मेन रोड से निकला जाएगा तो लगभग पौन घण्टे चलना होगा।
सलीमा ने सोचा कि चैक पर जाकर रिक्शा कर लिया जाए।
चाय को जल्दी-जल्दी गुटक कर सलीमा ने रूकैया को ओढ़नी से सिर ढंकने को कहा और
वे लोग चैक की तरफ निकल पड़े।
सलीमा बेहद घबराई हुई थी।
यदि परमजीत कौर के घर भी सुरैया न मिली तब..?
सलीमा ने काली ओढ़नी से अच्छी तरह सिर और बदन ढंक लिया।
वे लोग चैक पर आईं।
वहां पान की गुमटियां खुली हुई थीं।

एक कोने पर रिक्शेवाले सवारियों की राह तके हुए थे।
उन्हें देख एक रिक्शा उसकी तरफ बढ़ा।
सलीमा ने देखा कि वह एक जवान रिक्शावाला था।
सलीमा ने उससे कोई बात न की और एक अधेड़ रिक्शावाले को इशारा से पास बुलाया।
उस रिक्शे पर सवार होकर वे लोग वीनस ब्यूटी पार्लर की तरफ चल दिए।
सदर बाज़ार से होकर रिक्शा गुज़रा।
दुकानें बंद हो रही थीं, हां पान की गुमटियों पर नौजवान लड़कों ने अड्डे बना लिए थे।
सलीमा और रूकैया ने महसूस किया कि उन शोहदों की निगाहें उनका पीछा कर रही हैं।
बाज़ार ख़त्म हुआ फिर वे लोग रेल्वे-क्रासिंग वाले फाटक पर पहुंचीं।
फाटक बंद था।
फाटक के दोनों तरफ कबाड़ियों के घर और मोटर-साईकिल की गैरेज हैं।
एक पान की गुमटी पर सटोरियों की भीड़ थी।
रिक्शावाला पान की गुमटी पर जाकर बीड़ी सुलगाने लगा।
सलीमा को एक-एक मिनट भारी लग रहा था।
तभी स्टेशन की तरफ से रेलगाड़ी की सीटी की आवाज़ गूंजी।
रात की आखिरी गाड़ी गुज़रने वाली थी।
खट् खट् करती रेल गुज़री तब फाटक खुला और रिक्शेवाला बीड़ी का आखिरी कश खींच कर रिक्शे की तरफ लपका।
फाटक पार कर वे लोग अंधेरी सड़क पर आ गए।
जाने क्यों रेल्वे-फाटक के एक तरफ तो रोशनियों के कुमकुम जगमगाते हैं और फाटक के दूसरी तरफ अंधेरे का साम्राज्य रहता है।
अब रिक्शा मुख्य सड़क छोड़, नाला-पुल पार कर एक पतली गली में जा घुसा।
इस गली के आखिर में खन्ना-नर्सिंग होम है।
सलीमा खन्ना नर्सिंग होम यानी कि प्रसूति और गर्भपात के कारखाना के बारे में अच्छी तरह जानती है। माना कि उसका साबिका इस नर्सिंग-होम से नहीं पड़ा था, लेकिन उसकी जानकारी में कई ऐसी बदनाम और शरीफ़ लड़कियों के नाम हैं, जिन्होंने

इस नर्सिंग-होम की सेवाएं लेकर अपने पाप से छुटकारा पाया था।
खन्ना नर्सिंग होम के बाद दो घर छोड़कर वीनस ब्यूटी पार्लर है।
रिक्शा ब्यूटी-पार्लर के बाहर रूक गया।
सलीमा ने रिक्शेवाले से कहा-"भइया, पांच मिनट रूकना, हमें तुरंत लौटना भी है।"
रिक्शेवाला खटपटिया नहीं था, बिना हील-हुज्जत के मान गया।
सलीमा और रूकैया रिक्शे से उतरकर ब्यूटी-पार्लर की चैखट पर आ खड़ी हुईं।
मेन-शटर बंद था, बगल से एक दरवाज़ा था।
सलीमा ने दरवाज़े पर लगी काॅल-बेल का बटन दबाया।
पता न चला कि घंटी बजी या नहीं, हां ऊपर बाल्कनी से एक आवाज़ आई-"कौन?"
सलीमा सड़क पर आई और ऊपर की ओर सिर उठाया। देखा कि वहां नाईटी पहने परमजीत कौर मैडम खड़ी हैं।
सलीमा ने उन्हें नमस्ते की और पूछा-"सुरैया अभी तक घर नहीं लौटी?"
परमजीत कौर ने आश्चर्य प्रकट किया-"क्या----आज तो वह शाम छः बजे ही घर चली गई थी।"
सलीमा का दिल धक कर गया-"तब, घर तो नहीं पहुंची वो---?"
परमजीत कौर मैडम बोलीं-"मुझे क्या मालूम, इतनी लड़कियां यहां काम करती हैं। मैं सबका हिसाब तो रखती नहीं।"
फिर कुछ सोच कर परमजीत कौर ने पूछा--"उसे फोन करके पूछ लो----!"
सलीमा क्या जवाब देती----सुरैया का फोन स्विच-आॅफ बताता है।
"इसका मतलब----!" सलीमा ने माथा पकड़ लिया और ब्यूटी-पार्लर के दरवाज़े पर बैठ गई।
परमजीत कौर मैडम अंदर जा चुकी थी।
रूकैया ने सलीमा को ढाढ़स बंधाना चाहा---लेकिन उसकी रूलाई फूट पड़ी।
सलीमा अब रूकैया को चुप कराने लगी और वे लोग रिक्शे पर बैठ गए।
वे लोग चिन्तित मुद्रा में घर लौट आए।
सलीमा अपने कमरे पहंुची तो उसे महसूस हुआ कि उसका बदन कांप रहा है।
वह निढाल बिस्तर पर गिर पड़ी।

उसे कंपकंपी सी महसूस हो रही थी।
रूकैया से कहा उसने तो रूकैया ने कम्बल से उसका बदन ढांप दिया।
कंपकंपी थी कि रूकने का नाम नहीं ले रही थी।
बदन ठंडा हो गया था। नब्ज़ धीमी चल रही थी।
सलीमा को तगड़ा सदमा लगा था।
वह दो दिन बिस्तर पकड़े रही।
अब्बू को तो मतलब ही न था कि घर में तीनों बेटियां हैं या नहीं।
हैं तो कैसे जी रही हैं, क्या कर रही हैं और क्या ऐसे ही इन्हें ज़िन्दगी गुज़ारनी होगी?
उधर सुरैया जो गई तो फिर वापस लौटकर न आई।
सलीमा और रूकैया उसका इंतेज़ार करती रहीं---
सकीना आपा अपने गम में थीं।
उनके बेटे यूसुफ को पुलिस पकड़ कर ले गई थी और छोड़ने का नाम नहीं ले रही थी।
सकीना आपा अपने दम एसपी, कलेक्टर से भी मिल आईं----चूंकि यूसुफ पर जो धाराएं लगीं थीं उस बिना पर उसे रिहा करने में तमाम मुश्किलें थीं।
सकीना आपा ने नगर के रसूखदार हिन्दू-मुसलमानों के दरवाजे पर भी दरख्वास्त लगाई।
किसी के कान में जूं नहीं रेंग रही थी।
न सुरैया का कुछ पता चल रहा था और न यूसुफ के रिहाई के आसार दिखलाई पड़ रहे थे।
सलीमा सोचा करती कि इत्ती बड़ी दुनिया में इत्ती छोटी सुरैया नामक गौरईया को खोज पाना क्या आसान काम है?

काले कोस का सफ़र---

यूसुफ को आतंकवादी समझ कर पुलिस पकड़ ले गई थी।
सलीमा ने सोचा नहीं था कि इबराहीमपुरा के मियां लोगों को न्याय दिलाने के लिए हिन्दू-बहुल आबादी इस तरह से एकजुट होगी।
सलीमा को अपनी सोच की क्षुद्रता पर दुख हुआ। उसने सोचा था कि एक गरीब मुसलमान विधवा के बेटे का आतंकवादियों से सम्बंध एक ऐसी खबर होगी जिससे हिन्दुओं की इस सोच को बल मिलेगा कि मुसलमान विकास-विरोधी होते हैं, मुसलमान पाकिस्तान-परस्त होते हैं और मुसलमान आतंकवादी संस्थाओं से मिले होते हैं----
स्थानीय अखबारों के सम्वाददाताओं ने ग़ज़ब की तत्परता दिखलाई।
स्थानीय व प्रादेशिक समाचार-पत्रों और न्यूज चैनलों में यूूसुफ के आतंकवादी होने की बात पर पुलिस-कारवाई की निन्दा की गई।
विधायक और सांसद को पत्र लिखे गए। हस्तक्षेप की मांग की गई।
रैलियां निकाली गईं।
कारण साफ था, इबराहीमपुरा के गिने-चुने मुसलमान कारोबारी हैं।
बाकी छोटे-मोटे काम-धन्धे में हैं या फिर जरायमपेशा, कबाड़ का धन्धा, सट्टेबाजी, मटका, देसी-शराब के खरीद-फ़रोख़्त, लौंडियाबाजी, चोरी-उचक्कई, चक्कूबाजी-छुरेबाजी के लिए बदनाम हैं अधिकांश मुस्लिम----
इन फुरसतिया मुसलमानों की सेवाओं का उपयोग सिनेमा-हाॅल में होता है, स्थानीय केबिल-डिश व्यापारी के कारिन्दे अमूूमन इबराहीमपुरा के मुस्लिम युवक ही हैं---जो लाईन बिछाते हैं, लाईन मेंटेन रखते हैं और मासिक किराया वसूलते हैं---किसी ने अकड़ने की ज़हमत की नहीं कि कनेक्शन कट---
अमूमन इन मुसलमानों को अच्छी निगाह से नहीं देखते लोग----
लेकिन यूसुफ के बहाने स्थानीय स्तर पर जमकर विरोध-प्रदर्शन हुआ।
इसी तारतम्य में नगरपालिका के पुस्तकालय भवन में एक आपात बैठक आहूूत हुई।
इसमें नगर के स्वनामधन्य लोगों ने भाग लिया।

विषय था यूसुफ की रिहाई----
सलीमा भी उस सभा में उपस्थित थी।
नगर के लब्ध-प्रतिष्ठित व्यापारी लक्खी सेठ की अध्यक्षता में बैठक हो रही थी।
हाजी सत्तार, मोहम्मद मन्नान, गोस्वामी के साथ लक्खी सेठ मंच पर विराजमान थे।
पीछे सफेद कपड़े पर नीली स्याही से लिखा था---'रिहाई-मंच'---
हाजी सत्तार का व्यक्तित्व सफेद कुर्ता-पायजामा, सफेद टोपी और सफेद दाढ़ी में काफी आकर्षक लग रहा था।
हाजी सत्तार ने सर्वप्रथम माईक पकड़ा और सभा को सम्बोधित किया।
उन्होंने कहा कि यूसुफ स्थानीय पुलिस की आपराधिक साजिश का शिकार है। इस पुलिसिया कार्रवाई से एक हंसता-खेलता परिवार तबाह हो गया है। यूसुफ की विधवा मां ने राज्य-सरकार में गुहार लगाने के बावजूद उसे सिर्फ आश्वासन ही मिला। यहां तक कि यूसुफ की गिरफ्तारी पर उठने वाले सवालों की जांच के लिए सरकार ने कोई जवाब नहीं दिया, जिससे साबित होता है कि आतंकवाद के नाम पर कैद बेगुनाह मुसलमान युवक की रिहाई का वादा सिर्फ धोखा था।
इबराहीमपुरा में आयोजित इस सम्मेलन में वामपंथी विचारों के पुरोधा मोहम्मद मन्नान ने कहा कि यूसुफ पर आरोप है कि उनके घर अंतर्राष्टीय आतंकवादी आया था। जिसका न तो कोई प्रमाण है और न ही कोई गवाह। आज तक पुलिस यह भी नहीं बता पाई है कि यूसुफ पर कौन से आरोप लगे हैं। इससे साबित होता है कि आतंकवाद के नाम पर सिर्फ बेगुनाह मुसलमानों को फंसाने और असली आतंकियों को खुली छूट देने की नीतिगत सिद्धांत पर सरकारें काम कर रही हैं।
वरिष्ठ पत्रकार अंकुर गोस्वामी ने कहा कि यूसुफ जैसे निर्दोष मुसलमानों को आतंकवाद के झूठे आरोपों में फंसा कर सरकारें हिंदुओं और मुसलमानों में दूरी पैदा करके अपनी गंगा-जमुनी संस्कृति की बुनियाद को कमज़ार करना चाहती है। लेकिन रिहाई-मंच दूसरे संगठनों के साथ मिलकर सरकारों के इस नापाक साजिश को नाकाम करने का प्रयास करेगी। उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान की इस धरती के इतिहास से हमें सबक सीखना होगा जब अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ यहां कि हिंदुओं और मुसलमानों ने मिलकर आजादी की लड़ाई लड़ी थी। आज फिर से हमें ऐसी ही तहरीक चला कर

साम्प्रदायिक और कार्पोरेट परस्त खुफिया एजेंसियांे और सरकारों से मोर्चा लेते हुए अपने देश की विरासत की रक्षा करनी होगी।

अंजुमन कमेटी के नेता सैयद अब्दुल्लाह ने कहा कि सरकार अपने को मुसलमानों का हिमायती बताती है लेकिन मुसलमानों के वोट से सरकार बना लेने के बावजूद मुसलमानों की स्थिति दयनीय बनी हुई है। उन्हांेने कहा कि मुसलमानों को आतंकवाद के नाम पर फंसाने की राजनीति मुसलमानों की नई पीढ़ी के मनोबल को तोड़कर उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बनाने की है जिसके खिलाफ अवाम को संघर्ष करना होगा।

वरिष्ठ रंगकर्मी दादू जायसवाल ने कहा कि साम्प्रदायिक साजिशों के खिलाफ हमें सांस्कृतिक हस्तक्षेप भी करना होगा। आज मीडिया से लेकर सिनेमा तक के माध्यम से मुसलमानों की छवि बिगाड़ने की कोशिश की जा रही है। जिसके खिलाफ मिली-जुली सांस्कृतिक परम्पराओं को आगे बढ़ाना होगा।

इबराहीमपुरा की मुस्लिम एकता पारटी के अध्यक्ष मुईन कुरैशी ने कहा कि राज्य सरकार ने आतंकवाद के बहाने मुसलमानों को टारगेट बनाया है, जिसे मुसलमान समझ गया है और आगामी चुनाव में वह इसका बदला भी लेगा।

पर्यावरणवादी आलम भाई ने कहा कि आजादी के बाद से मुसलमानों की संख्या उच्च सरकारी नौकरियों में लगातार एक साजिश के तहत कम किया गया है। निर्धनता और असुविधाओं के कारण मुस्लिम नौजवान आजीविका का संकट झेल रहे हैं और बेबुनियाद शक के आधार पर मुस्लिम नौजवानों को जेल में डाला जा रहा है। इसलिए इन साजिशों के खिलाफ नीतिगत स्तर पर संघर्ष करना होगा।

विश्वविद्यालय के छात्रनेता सुनील जोशी ने कहा कि आईबी की साम्प्रदायिक निगाहें सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे मुस्लिम युवकों पर हैं। क्योंकि मुसलमानों की यह पीढ़ी अपने अधिकारों के प्रति ज्यादा जागरूक है। ऐसे में ज़रूरत है कि इस संघर्ष में यह पीढ़ी खुद सामने आए।

सभा के आखिर में लक्खी सेठ ने अध्यक्षीय भाषण दिया।

उन्होंने कहा कि इसमें कोई शक नहीं कि इबराहीमपुरा एक मुस्लिम बहुल आबादी वाला नगर है। इसमें भी कोई शक नहीं कि इबराहीपुरा के मुसलमान अमन-पसंद

हैं----तमाम मुसीबतों और तकलीफों के बावजूद हमारे मुसलमान भाई मुख्य-धारा को मानते हैं। देश की तरक्की के लिए कंधे से कंधा मिलाकर काम करने में यकीन रखते हैं। यह वाकई खेद का विषय है कि पुलिस विभाग ने बिना छान-बीन, खोज-खबर के सिर्फ शक के आधार पर मुस्लिम युवक यूसुफ को गिरफ्तार करके ले गई है। हम इस गिरफ्तारी की भत्र्सना करते हैं, निन्दा करते हैं और एसपी, कमिश्नर, कलेक्टर और राज्य सरकार से प्रार्थना करते हैं कि यूसुफ के खिलाफ कोई सबूत हो तो उसे पेश किया जाए या कि उसे बाइज़्ज़त रिहा किया जाए अन्यथा इबराहीमपुरा के निवासी विरोध प्रदर्शन के उग्र तरीकों को अपनाने के लिए बाध्य हो जाएंगे---जिसकी सारी जिम्मेदारी शासन-प्रशासन की होगी।

सभा में सलीमा के साथ यूसुफ की अम्मी भी थीं----.

साबुत बचा न कोई---

देखते-देखते एक दिन ऐसा भी आया, जब इत्ती बड़ी दुनिया चुपके से विश्वग्राम बन गई।
जब पोस्टमैन की जगह कूरियर के बंदे और टेलीग्राम की जगह एसएमएस आने लगे।
जब नाबालिग बच्चे चमकती सीडी और मेमोरी कार्ड की नन्ही चिप्स के ज़रिए यौन-विद्‍या के गोपनीय मंत्र वीभत्स तरीके से सीखने लगे।
जब आॅन-लाईन शापिंग से स्लिम फ़िगर बनाने वाले, गंजापन दूर करने वाले, अंग्रेजी सिखाने वाले, सेक्सी-लुक वाले अत्यंत ज़रूरी उत्पाद जनता के दिलो-दिमाग में पर्याप्त जगह बनाने लगे।
जब औरतें महीने के उन ख़ास दिनों में पुराने कपड़े की जगह 'सेनेटरी-नेपकिन' इस्तेमाल करने लगीं और नवजात शिशु 'हग्गीज़'---!
जब यौन-व्यवहार में नैतिकता और मर्यादा की बात पर ज़ोर देने की जगह सरकारें, सहवास में सावधानी की तरकीबें बताने लगीं।
जब समाचार चैनल बलात्कार की खबरें दिखा टीआपी बढ़ाने लगे।
जब जेलों, विश्वविद्‍यालय कैम्पसों में और रेड-लाईट एरिया में 'कंडोम' आसानी से उपलब्ध होने लगे।
जब अमीर बनने की चाहत रखने वाली कमसिन बालाओं ने जान लिया कि 'जो दिखता है, वही बिकता है!' और देह-प्रदर्शन एक कला है न कि अश्लीलता।
जब मीडिया ने अपनी तमाम ताक़त, भूख, गरीबी, बेकारी, दलितों-अल्पसंख्यकों पर अत्याचार जैसी ख़बरों से हटाकर नित नए स्कूप तलाश करने लगी।
जब क्रिकेट खिलाड़ियों के चयन में देश के सबसे बड़े रंगमंच का क़ीमती समय बर्बाद होने लगा और उधर गरीब किसान आत्महत्या करते रहे।
जब प्राईम-टाईम के तमाम धारावाहिकों से आम-आदमी एकदम ग़ायब होता गया और उनकी जगह अमीरजादियों और धनपशुओं के अवैध सम्बंध, सत्ता के षडयंत्रों ने ले ली।
तब उस छोटे से नगर इब्राहीमपुरा ने भी समझ लिया कि वह अब एक विकसित सिटी

बनने जा रहा है।
अब नगर में तीन-तीन पेट्रोल-टंकिया, दो सिनेमा-घर और मोटर-साईकिल, टीवी, फ्रिज आदि के कई शो-रूम खुल गए।
गली-गली मेें वीसीडी प्लेयर और नीली-कैसेट की गुमटियां डल गईं।
दुतल्ला मकानों में इंटरनेट के ज़रिए ‘एडल्ट-साईट’ देख-देख कर लोग अपना सामान्य ज्ञान बढ़ाने लगे और आपस में मिलने पर कहने लगे कि वाॅव, नेट न होता तो एक इंपार्टेंट नाॅलेज से हम वंचित रह जाते भाई! देेखा तुमने, माॅम और ग्रेन्नियां भी कितनी सेक्सी होती हैं। हम तो सोचते थे कि एक उम्र के बाद सब कुछ खत्म हो जाता है।
‘‘अम्मेज़िंग या---र! टोटेली अनबिलीवेबल है सब! देखा तुमने लेस्बियन, गे और एनल-सेक्स की डीवीडीज़!’’
ऐसे समय में जो नौयुवक कुछ न बेच सके वह दिन-भर में मोबाईल के लिए ‘टाॅप-अप’, सट्टे की पट्टियां, बीयर और ठर्रा, गांजा और ब्राउन-शुगर की पुड़िया आदि बेच-बेचकर रूपए बनाने लगे।
फुर्सत में नौयुवक लड़कियों को छेड़ना, रेल्वे-स्टेशन जाकर छोटी-मोटी चोरी-छिनैती अंजाम देने जैसे पार्ट-टाईम काम करने लगे।
वैसे सलीमा ने एक बात की और नोटिस ली कि अब जो ज़माना आया है उसमें कई लड़कियां खुद की छिड़ने के लिए तत्पर रहती हैं। इस काम में मोबाईल ने उनकी काफी मदद की। इन तेज-तर्रार लड़कियों ने बाकायदा जिस्म-फरोशी के नए बाज़ार तैयार कर लिए हैं।
इबराहीमपुरा में पहले जहां दो बैंक हुआ करते थे लेकिन बाज़ारवाद की आंधी से नगर में कई और बैंक खुल गए थे। कई एटीएम मशीनें लग गई थीं।
सलीमा ने जिस बैंक से आटा-चक्की के लिए लोन लिया था उस बैंक की औकात बढ़ी और नतीजतन ब्रांच-मैनेजर पद के लिए किसी सीनियर अधिकारी की जगह बनी।
एक दिन जब सलीमा बैंक गई तो उसने देखा कि बैंक-मैनेजर के कमरे के बाहर लगे नाम-पट्ट पर आर. के. विश्वकर्मा दर्ज है।
उसे लगा कि कहीं ये वही विश्वकर्मा साहब तो नहीं जिन्होंने उसकी ज़िन्दगी की लोकल

गाड़ी को एक्सप्रेस में बदल दिया था।
सलीमा का जी धक-धक कर उठा।
उसने रस्तोगी बाबू से सम्पर्क साधा।
बैंक का बड़ा बाबू रस्तोगी खुश-मिजाज़ आदमी था।
वह सलीमा के इतिहास से परिचित था।
सलीमा ने रस्तोगी बाबू से ब्रांच-मैनेजर के कमरे की तरफ इशारा कर पूछा-"क्या ये अपने विश्वकर्मा साहब हैं?"
रस्तोगी ने आंख मारकर कहा-"हां, दो दिन पहले ही साहब ने यहां का चार्ज सम्भाला है।"
सलीमा से रहा न गया।
उसके क़दम सीधे मैनेजर के कमरे की तरफ बढ़ गए।
बैंक के अंदर काफ़ी फेर-बदल हुई थी।
पहले सब-कुछ पुराने तौर-तरीके का हुआ करता था। पहले लकड़ी के पार्टीशन या पांच-इंची दीवारों के अलग-अलग कम्पार्टमेंट बनाए गए थे। ब्रांच-मैनेजर का कमरा भी परम्परागत हुआ करता था। लेकिन जब से कम्प्यूटराईजेशन हुआ तब क्लर्कोंें की संख्या घटी और बैंक का अंदरूनी माहौल बदल गया। अब बैंक ने शहरी तर्ज पर एक बड़े हॉल को लकड़ी और कांच के छोटे-छोटे, खूबसूरत कम्पार्टमेंट में बदल डाला है। एयरकण्डीशन लग जाने से बैंक के अंदर बड़ा सुकून मिलता है।
ब्रांच-मैनेजर का कमरा भी देखने लायक बना है।
चार फुट की ऊंचाई तक कमरे में प्लाई लगा है और उसके ऊपर छत तक कांच लगा हुआ है। दरवाज़ा हल्के मैरून रंग का अल्प-पारदर्शी था, जिस पर्दा लगाने की ज़रूरत न थी।
सलीमा ने प्लाई के ऊपर लगे कांच से कमरे के अंदर का जायज़ा लिया।
टकले सिर वाला जो व्यक्ति मुख्य कुर्सी पर विराजमान था वह निस्संदेह विश्वकर्मा साहब ही था।
सलीमा भावावेश में कांच का दरवाज़ा हल्के से पुश करके सीधे कमरे के अंदर चली गई।

विश्वकर्मा साहब के सामने ढेर सारे कागज़ात पड़े थे।
वह एक कागज़ पर कलम रखे थे और उनकी नज़रें गड़ाए कम्प्यूटर के स्क्रीन पर थीं। स्क्रीन की रौशनी से उनके सिर पर पड़ रही थी जिससे उनकी चांद चमक रही थी।
सलीमा को हंसी आ गई।
सलीमा टेबिल के सामने रखी कुर्सी पर बैठ गई और धीरे से उन्हें 'आदाब' कहा।
विश्वकर्मा साहब ने सिर उठाया और उसे सामने बैठा देख आश्चर्य-चकित हुए। थोड़ा मुस्कुराए और तत्काल उन्होंने घण्टी बजाई और सलीमा के लिए चाय लाने को चपरासी से कहा।
सलीमा खुश हुई कि चलो साहब उसे भूले नहीं हैं। क्या हुआ कि अब उसके जिस्म में पहले जैसी कोई कसक-चमक नहीं रही लेकिन दिल तो अब भी उसका उतना ही कोमल और जवान है। उसके अंदर अब भी एक चाहत तो बरकरार ही है कि कोई उससे प्यार करे, उससे सुहानुभूति रखे और उसका ख्याल रखे।
विश्वकर्मा साहब ने सामने रखे तमाम कागज़ात एक तरफ हटा दिया और पूरी तरह सलीमा की तरफ मुखातिब हुए।
वह उसे गौर से देख रहे थे।
सलीमा को अपने वजूद पर तरस आ रहा था।
"क्या हाल बना रखा है सलीमा तुमने?"--यही तो कहा था विश्वकर्मा साहब ने।
सलीमा क्या कहती।
सुरैया घर से क्या भागी, सलीमा की ज़िन्दगी में वीरानी ही वीरानी आ गई।
जवान सुरैया की हरक़त के बाद सलीमा जैसे टूट ही गई थी।
सलीमा जवाब में मुस्कुराना चाह रही थी, लेकिन उसके रूखे चेहरे पर मुस्कान की रेखाएं ऐसी नज़र आईं जैसे वह रोना चाह रही हो।
सलीमा विश्वकर्मा साहब से कहना चाह रही थी कि कितना अच्छा लगा कि आप मुझे भूले नहीं हैं।
वह कह न पाई।
बस चुपचाप उन्हें मंत्रमुग्ध निहारती रही।
तब तक चाय आ गई।

विश्वकर्मा साहब ने चाय का कप चपरासी से लेकर सलीमा की तरफ बढ़ाया।
सलीमा धन्य हुई।
चाय किसी तरह पीकर उसने उठते हुए कहा-''अल्ला की मेहरबानी, जो आप मुझे भूले नहीं हैं।''
विश्वकर्मा साहब हंस दिए और बोले-''कैसा चल रहा है?''
सलीमा ने कहा-''आप की दुआ है, सब ठीक-ठाक है। आपने मदद न की होती तो जाने क्या होता!''
'पिताजी कैसे हैं----और तुम्हारी बहनें ठीक हैं न---?''
सलीमा क्या जवाब देती---चाय पीते हुए उसने बताया संक्षेप में सुरैया की हरकत के बारे में विश्वकर्मा साहब को बताया।
वे सोच में पड़ गए। कुछ सोच कर कहा कि पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई थी---?
सलीमा ने बतलाया कि पुलिस-थाने गई थी जहां पुलिस वालों ने ये कहकर रिपोर्ट लिखने से इंकार कर दिया कि लौंडिया अपने किसी यार के साथ भागी होगी और लौट के आना होगा तो आ जाएगी वरना इतनी बड़ी दुनिया में जाने कितनी सुरैयाएं यूं ही घर से भागती रहती हैं----पुलिस कितनों को ढूंढे----
विश्वकर्मा साहब क्या जवाब देते---
उन्होंने सलीमा से कहा-''शाम को मिलते हैं----घर आओ तो इत्मीनान से बातें करेंगे।''
सलीमा मुस्कुराई-''ठीक है।''

मेरे दुख की दवा करे कोई----

सलीमा शाम सात बजे विश्वकर्मा साहब के बंगले पहुंची।
वह अकेले ही थे।
सलीमा को देख खिल उठे।
सलीमा उनके ड्राइंग-रूम आकर सोफे पर आराम से बैठ गई।
विश्वकर्मा साहब ने नौकर को आवाज़ दी।
वह एक बूढ़ा आदमी था, उससे विश्वकर्मा साहब ने कहा-“खाना तैयार हो गया?”
नौकर बोला-“जी सर!”
“अच्छा अब जल्दी से दो काफ़ी बनाओ और छुट्टी करो।”
नौकर सलीमा को घूर कर देखता हुआ किचन चला गया।
सलीमा ने टी-टेबिल पड़ा अख़बार उठा लिया और सरसरी नज़रों से खबरें पढ़ने लगी।
अखबार में एक प्रसिद्ध संत के जीवन पर सनसनीखेज जानकारियां थीं।
किस तरह तथाकथित संत अपने मोह-पाश में कुंवारी लड़कियों को फांसता था फिर उनका शील-हरण करता था। उसके आश्रम में एक ऐसा तंत्र विकसित था जो बड़े गोपनीय तरीके से इस कार्य का अंजाम देता था। कुंवारी लड़कियों को प्रलोभन या प्रताड़ना के द्वारा मुंह बंद रखने की धमकी दी जाती थी।
सलीमा को अपना बचपन और अपने साथ हुआ यौन-उत्पीड़न आया, साथ ही याद आए गंगाराम सर----
लेकिन वे तो बड़े मुहब्बती थे, उन्हें अपराधी कैसे कहे सलीमा?
और उसे सुरैया की याद हो आई।
अखबार के अक्षर बड़े-बड़े होकर काली चादर में बदल गए।
सलीमा ने अखबार को टेबिल पर रख दिया और कमरे का जायज़ा लेने लगी।
विश्वकर्मा साहब का घर सुसज्जित था जो उनकी सुरूचि को प्रदर्शित करता था।
तभी नौकर काफी ले आया।
विश्वकर्मा साहब गाउन पहने सामने आ बैठे और एक सिगरेट सुलगा ली।

सलीमा के मन में सिगरेट पीने की इच्छा हुई।
नौकर ने काफ़ी की ट्रे टेबिल पर रख कर विश्वकर्मा साहब से छुट्टी कर ली।
सलीमा ने काफी सिप करते हुए टेबिल पर रखे सिगरेट के पैकेट को उठा लिया।
सलीमा ने एक सिगरेट निकाल कर होंठ से लगाई तो विश्वकर्मा साहब ने मुस्कुराकर लाईटर आॅन किया।
सलीमा ने सिगरेट का गहरा कश अंदर खींचा।
अब्बू की बीड़ियां वह यदा-कदा पी लिया करती थी।
सिगरेट का धुंआ उतना कसैला नहीं था और बीड़ी जैसा बदबू भी नहीं कर रहा था।
उसे मज़ा आने लगा।
काफ़ी पीकर वे लोग बेड-रूम में आ गए।
विश्वकर्मा साहब ने उसे अपने डबल-बेड पर डबल तकिया के सहारे पर टिकाया और पलंग के पैताने रखी बड़ी सी टीवी के पास जाकर खड़े हुए।
बोले-''कुछ मज़ेदार चीज़ देखना है?''
सलीमा ने हां में सिर हिलाया।
विश्वकर्मा साहब ने डीवीडी पर एक ब्लू-फिल्म चलाई।
दो अंग्रेज लड़कियां और एक हब्शी आदमी के बीच जिस्मानी खेल की फिल्म थी वह।
विश्वकर्मा साहब उसके पास आकर बैठ गए।
सलीमा फिल्म में मगन थी और विश्वकर्मा साहब उसके जिस्म के उतार-चढ़ाव में।
विश्वकर्मा साहब उठे और दो गिलासों में जाम बना कर ले आए।
फिर वह किचन की तरफ गए और लौटे तो उनके हाथ में एक तश्तरी थी जिसमें भुना काजू और पिस्ता था।
सलीमा ने एक काजू मुंह में डाल लिया।
विश्वकर्मा साहब ने उसके हाथ में जाम का एक गिलास पकड़ाया।
फिर दोनों ने 'चीयर्स' बोल कर जाम टकराए।
सलीमा ने जाम का घूंट भरा और कड़वा लगा तो काजू के दो-तीन टुकड़े मुंह के हवाले किए।
विश्वकर्मा साहब तरंग में आकर बोले-''अभी तक तुमने जितनी पिक्चर देखी सब

विदेशी हुआ करती थीं। अब अपने देश में भी ब्लू फिल्म बनने लगी है। मेरे पास एक 'देसी पिक्चर' है, खालिस हिन्दुस्तानी, दिखाऊं!''

सलीमा इंकार कहां करती।

वह तो इसी बात पर धन्य हो जाया करती कि विश्वकर्मा साहब उससे पूछ लेते हैं।

अब टीवी के स्क्रीन पर दूसरी पिक्चर आने लगी।

इसमें दिखलाई जाने वाली लड़कियां दक्षिण-भारत की लग रही थीं।

काली-कलूटी, भारी जिस्म वाली लड़कियां।

आदमी भी ऐसे जैसे गंदे राक्षस।

हां, हिन्दुस्तानी लड़कियां अंग्रेज़ों जैसी बिंदास नहीं थीं।

उनकी हरकतों में उतना खुलापन नहीं था, जिससे सलीमा को मज़ा आने लगा।

कब जाम खाली हुआ और कब विश्वकर्मा साहब ने दूसरा पैग बनाया, वह जान न पाई।

सलीमा की निगाहें टीवी स्क्रीन पर जीम थीं।

दक्षिण-भारतीय लड़कियों वाला 'खेला' खत्म हुआ और स्क्रीन पर दिखने लगा किसी बड़े होटल का बाथरूम---

बाथरूम में एक लड़की घुस रही है।

एक भरपूर जवान लड़की, जिसने मिनी-स्कर्ट पहन रखा है।

कैमरे से लड़की के पीछे की तरफ है।

लड़की पहले टाॅप उतारती है।

उसकी खूबसूरत पीठ नमूदार होती है।

विश्वकर्मा साहब सलीमा की पीठ पर हाथ रखकर दबाव बनाते हैं।

सलीमा के बदन पर सुरसुराहट होती है।

फिर लड़की झुकती है और उसकी मिनी-स्कर्ट में कैद जिस्म कैमरे के फोकस में आता है।

लड़की धीरे-धीरे स्कर्ट उतारती है।

अब वह सिर्फ पैंटी पहने है।

फिर लड़की अचानक कैमरे की तरफ घूमती है।

सलीमा को लड़की का चेहरा जाना-पहचाना लगता है और वह अचानक चीख पड़ी-''अरे

ये तो अपनी सुरैया है!''

सलीमा की चीख सुनकर विश्वकर्मा साहब घबरा गए।

सलीमा ने आंखें बंद कर लीं और अधनंगा जिस्म लिए बेडरूम से बाहर निकल आई।

विश्वकर्मा साहब के हाथ से गिलास छूट गया और वह भी सलीमा के पीछे भागे।

देखा सलीमा सोफे पर लस्त सी पड़ी है।

उसकी सांसें धौंकनी की तरह चल रही हैं, जैसे मीलों दौड़कर आई हो।

सलीमा विश्वकर्मा साहब के कंधे पर सिर रख ज़ार-ज़ार रोने लगी।

विश्वकर्मा साहब समझना चाह रहे थे कि माज़रा क्या है?

और सलीमा उन्हें कैसे समझाती कि अभी स्क्रीन पर जिस लड़की के जिस्म का लुत्फ वे लोग उठा रहे थे वह और कोई नहीं बल्कि सलीमा की मंझली बहन सुरैया है----..